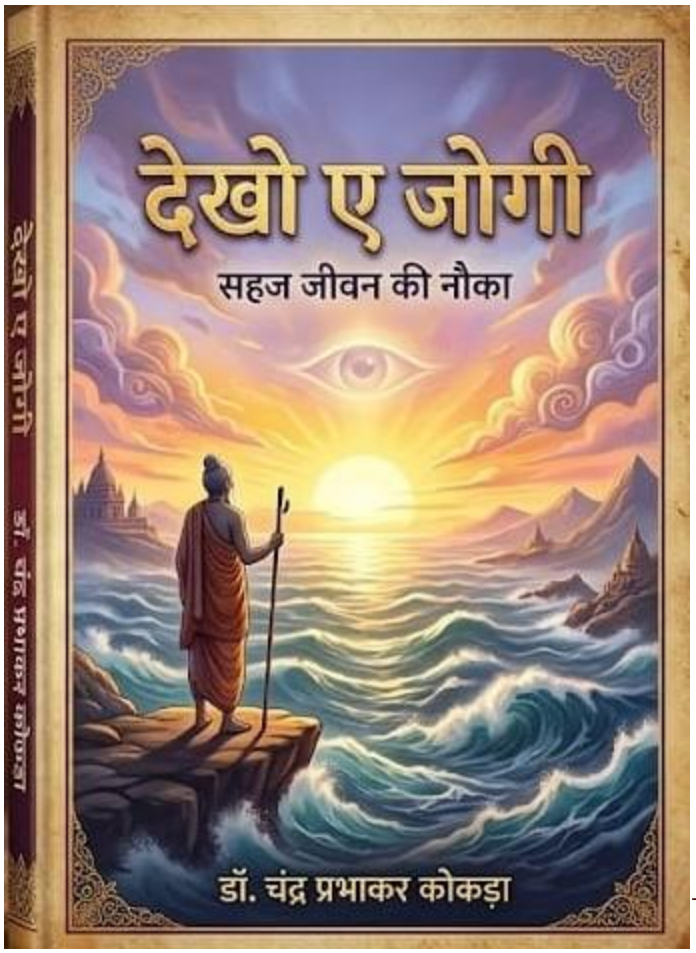

देखो ए जोगी — सहज जीवन की नौका

अध्यात्म, सहज समाधि और अद्वैत चेतना का कालजयी शास्त्रीय महाग्रंथ

डा. चन्द्र प्रभाकर कोकड़ा

लेखक परिचय एवं संपर्क सूत्र 

- लेखक: डा. चन्द्र प्रभाकर कोकड़ा
- जन्म तिथि एवं स्थान: 25 जुलाई 1942, भिवानी (हरियाणा)
- सम्मान: World Book of Records (London) द्वारा सम्मानित
- ऐतिहासिक योगदान: 1957 के मातृभाषा हिंदी आंदोलन में सक्रिय भागीदारी एवं ऐतिहासिक कारागार यात्रा।
- निःशुल्क आध्यात्मिक साहित्य डिजिटल पुस्तकालय: Bhajansamratchandra.Com
- स्थायी पता: बिचला बाजार, भिवानी - 127021, हरियाणा
- संपर्क सूत्र: 9992075303

पाठकों के नाम संदेश: देखो ए जोगी!

हे आत्मन! हे यात्री! संसार की विकराल आपाधापी, अशांति और निरुद्देश्य दौड़ के बीच यदि यह ग्रंथ आपके हाथों में आया है, तो इसे केवल एक आकस्मिक संयोग मत मानिए। यह आपकी अपनी ही अंतरात्मा की पुकार है, जो युगों-युगों की निद्रा से जागकर अपने वास्तविक घर की ओर लौटने को व्याकुल है। आज का मानव बाहर से जितना समृद्ध, सुसज्जित और आधुनिक दिखता है, भीतर से उतना ही जर्जर, अकेला और अशांत है। हमने चाँद-तारे छूने की क्षमता तो पा ली, परंतु अपने ही हृदय की गहराई में झाँकने का साहस खो दिया। हम सूचनाओं के महासमुद्र में तैर रहे हैं, लेकिन बोध और प्रज्ञा की एक बूँद को तरस रहे हैं। यह ग्रंथ उसी खोए हुए आभ्यंतरिक बोध को पुनरुज्जीवित करने का एक विनम्र किंतु अत्यंत सशक्त प्रयास है।

'देखो ए जोगी' का उद्घोष किसी बाहरी संन्यासी के लिए नहीं, बल्कि आपके भीतर छिपे हुए उस अमर 'जोगी' के लिए है जो शरीर, मन, बुद्धि और अहंकार के आवरणों के पीछे सर्वदा अछूता, शुद्ध और साक्षी रूप में विराजमान है। जोगी वह नहीं है जिसने घर-बार छोड़ दिया, गेरुए वस्त्र धारण कर लिए या जंगलों में गुफाएँ बना लीं; जोगी वह है जिसने जीवन के बाह्य कोलाहल के बीच अपने भीतर के परम मौन को पा लिया है। जो संसार में रहते हुए भी संसार से अलिप्त है, जैसे जल में कमल का पत्ता। यह ग्रंथ आपके हाथों में एक शास्त्र नहीं, बल्कि आपकी जीवन-यात्रा की वह खेवैया नौका है, जो आपको भ्रांतियों, वासनाओं और दुखों की उफनती नदी से पार उतारकर सहजता, निस्तब्धता और अद्वैत के अमर तट तक पहुँचाने आई है।

जीवन वास्तव में कोई समस्या नहीं है जिसे सुलझाया जाए; जीवन तो एक परम रहस्य है जिसे जिया जाए, जिसका आस्वादन किया जाए और जिसके प्रति कृतज्ञता से नतमस्तक हुआ जाए। परंतु हमने अपने ही विचारों का एक ऐसा मकड़जाल बुन लिया है जिसमें हम स्वयं ही उलझकर दम घोंट रहे हैं। अतीत की पश्चात्ताप भरी स्मृतियाँ और भविष्य की भयग्रस्त कल्पनाएँ—इन दोनों के पाटों के बीच हमारा वर्तमान क्षण पिस रहा है। यह ग्रंथ आपको सिखाता है कि किस प्रकार स्मृतियों के बोझ को फेंककर 'इसी क्षण' और 'इसी स्थान' (Here and Now) पर संपूर्णता से उपस्थित हुआ जाए। जब आप वर्तमान में जागते हैं, तब समस्त मानसिक व्याधियाँ और कष्ट उसी प्रकार विलीन हो जाते हैं जैसे सूर्योदय होते ही सघन तमिस्रा छँट जाती है।

इस महाग्रंथ की रचना केवल बौद्धिक तुष्टि या पांडित्य प्रदर्शन के लिए नहीं हुई है। यह मेरे अस्सी से अधिक वर्षों के जीवन-अनुभवों, गहन आत्म-अन्वेषण, वेदों-उपनिषदों के चिंतन, अष्टावक्र की आत्म-दृष्टि, गोरखनाथ के सहज-योग और विश्वभर के महान रहस्यवादियों की अमर वाणी का सार-निचोड़ है। जब आप इसके पृष्ठों से गुज़रेंगे, तो आपको प्रतीत होगा कि यह शब्द नहीं हैं, बल्कि यह आपके अपने ही परम अस्तित्व के स्पंदन हैं। यह पुस्तक आपसे बातें करेगी, आपको झकझोरेगी, आपके झूठे संशयों का छेदन करेगी और अंततः आपको उसी अगाध शांति में डुबो देगी जिसकी खोज में आप जनम-जनम से भटक रहे थे।

आइए, इस ज्ञान-नौका पर सवार हो जाइए। अपने समस्त दुराग्रहों, पूर्वाग्रहों, मान्यताओं और मानसिक तनावों के भारी बस्ते को तट पर ही छोड़ दीजिए। इस नौका में केवल वही प्रवेश कर सकता है जो निष्कपट, सरल और बालक की भाँति निर्मल होने को तैयार है। यदि आप तट पर खड़े होकर केवल लहरों

को गिनते रहेंगे, तो कभी पार नहीं पा सकेंगे; आपको तो नौका में बैठकर पतवार थामनी होगी या फिर स्वयं को उस परम खेवैया के हाथों में सौंप देना होगा। यह ग्रंथ आपको निर्भयता, समता और अखंड आनंद का वह मार्ग दिखाएगा जो अत्यंत सुगम और सहज है।

मेरी यही हार्दिक प्रार्थना है कि इस ग्रंथ का एक-एक शब्द आपके भीतर सोया हुआ विवेक-दीप प्रज्ज्वलित करे। यह पुस्तक आपके हाथों में एक मशाल बने, जो आपके जीवन के अंधकारमय कोनों को आलोकित कर दे। यदि इस रचना को पढ़कर एक भी साधक के जीवन में शांति की एक किरण उतर पाई, यदि किसी एक भी व्यथित हृदय को विश्राम मिल सका, तो मैं अपने इस जीवन-प्रयास को कृतार्थ मानूँगा। हे जोगी! जागो, उठो और अपनी इस सहज-यात्रा का शुभारंभ करो, क्योंकि तुम्हारा निज-धाम अब तुमसे अधिक दूर नहीं है।

प्राक्कथन (विस्तृत भूमिका)

मानव इतिहास के इस सबसे क्रान्तिकारी और आधुनिक दौर में, जहाँ भौतिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने अभूतपूर्व प्रगति की है, मनुष्य का आंतरिक जीवन भयानक रूप से छिन्न-भिन्न हो चुका है। बाह्य सुख-सुविधाओं, चमचमाते नगरों, तीव्रगामी वाहनों और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के इस युग में मानवीय चेतना अवसाद, तनाव, एकाकीपन और अस्तित्वगत शून्यता से ग्रस्त है। हमने बाह्य जगत को जीतने में तो सफलता प्राप्त कर ली, किंतु अंतर्जगत का भूगोल हमारे लिए पूरी तरह अनजाना रह गया। यही कारण है कि विशाल अट्टालिकाओं और अपार धन-संपदा के बीच भी मनुष्य की आत्मा भूखी और अशांत है। इस वैश्विक मानसिक संत्रास का मुख्य कारण यह है कि हमने जीवन के बाह्य ढाँचे को ही सब कुछ मान लिया और उस मूल चेतना को भुला दिया जो इस पूरे ढाँचे को प्राण प्रदान करती है।

भारतीय ऋषियों और विश्व के रहस्यवादियों ने सदैव इस बात पर बल दिया है कि संसार का निवारण संसार को बदलने से नहीं, बल्कि अपनी दृष्टि को बदलने से होता है। अद्वैत वेदांत का मूल दर्शन हमें यही सिखाता है कि दृश्यमान जगत् परिवर्तनशील, क्षणभंगुर और आभासी है; जबकि द्रष्टा या साक्षी चेतना नित्य, परिवर्तनहीन और शाश्वत है। जब तक मनुष्य स्वयं को इस देह, मन और अहंकार के साथ एकाकार करके देखता रहेगा, तब तक वह जन्म-मृत्यु, हर्ष-शोक, और सुख-दुख के चक्रव्यूह में पिसता

रहेगा। अद्वैत दर्शन किसी नए सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं करता, बल्कि यह केवल हमारे भ्रांत तादात्म्य (Misidentification) को तोड़ता है। यह हमें स्मरण कराता है कि तुम जल की चंचल तरंग नहीं हो, तुम तो स्वयं पूरा अगाध महासमुद्र हो।

महर्षि अष्टावक्र की दृष्टि आध्यात्मिक क्रांति की पराकाष्ठा है। अष्टावक्र गीता में वे किसी क्रमिक साधना, लंबा अभ्यास या कठोर तपश्चर्या की बात नहीं करते; वे 'तत्क्षण मुक्ति' का उद्घोष करते हैं। अष्टावक्र का स्पष्ट कथन है कि तुम अभी, इसी क्षण मुक्त हो, केवल अपने इस भ्रम को छोड़ दो कि तुम बद्ध हो। 'मुक्ताभिमानी मुक्तो हि बद्धो बद्धाभिमान्यपि'—अर्थात् जो स्वयं को मुक्त मानता है वह मुक्त है, और जो स्वयं को बँधा हुआ मानता है वह बँधा हुआ ही रहता है। अष्टावक्र की यह निर्भीक और सीधी चोट साधक को समस्त क्रियाकांडों, अनुष्ठानों और वैचारिक संजालों से मुक्त करके सीधे साक्षी भाव में स्थापित कर देती है। उनकी दृष्टि में मुक्ति कोई भविष्य की घटना नहीं, बल्कि वर्तमान की अनुभूति है।

दूसरी ओर, गुरु गोरखनाथ का सहज-योग भारतीय तंत्र और नाथ परंपरा का वह व्यावहारिक शिखर है, जो आम जनमानस के लिए अत्यंत सुलभ है। गोरखनाथ कहते हैं—'हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानम्'। ध्यान कोई गंभीर, शुष्क या उदास कर देने वाली क्रिया नहीं है; ध्यान तो जीवन की सहजता, प्रसन्नता और जीवंतता का ही नाम है। गोरखनाथ ने बाह्य आडंबरों, मुंडन, भस्म लेपन और पाखंडों पर करारी चोट करते हुए काया के भीतर ही अनहद नाद और सहज समाधि का मार्ग प्रशस्त किया। उनका मानना था कि जब श्वास-प्रश्वास की गति 'अजपा-जप' में बदल जाती है और मन सहज ही अपने स्रोत में विलीन होने लगता है, तब योगी बिना किसी शारीरिक क्लेश के परम पद को प्राप्त कर लेता है।

'देखो ए जोगी — सहज जीवन की नौका' नामक यह महाग्रंथ अद्वैत वेदांत की अगाध गहराई और नाथ-सिद्धों की सहज-समाधि का एक अनुपम और सर्वांगीण संगम है। यह ग्रंथ आधुनिक साधक की बौद्धिक तथा व्यावहारिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर रचा गया है। इसमें जटिल दार्शनिक सिद्धांतों को अत्यंत सरल, काव्यात्मक और बोधगम्य भाषा में प्रस्तुत किया गया है। हर अध्याय साधक को उसकी दैनिक गतिविधियों, मानसिक उलझनों और भावनात्मक उथल-पुथल से उठाकर एक उच्चतर साक्षी धरातल पर स्थापित करने की क्षमता रखता है। यह ग्रंथ किसी विशेष संप्रदाय, मत या पंथ का समर्थन नहीं करता; यह तो विशुद्ध आत्म-ज्ञान और सार्वभौमिक सत्य का संवाहक है।

इस ग्रंथ की अद्वितीय संरचना इसके 11 विशाल अध्यायों में निहित है, जो मानव चेतना के विभिन्न सोपानों की सांगोपांग व्याख्या करते हैं। अखंड साक्षी भाव से प्रारंभ होकर यह यात्रा 'तथाता' (स्वीकार भाव), देह-भाव से मुक्ति, निष्काम कर्म, मन के सूक्ष्म मनोविज्ञान, भीड़ में एकांत, प्रेम-लक्षणा भक्ति, अष्टावक्र गीता का मर्म, गोरखनाथ की सबदी, ताओ-ज़ेन-सूफी-कबाला के वैश्विक रहस्यवाद से होती हुई मृत्यु के महा-उत्सव और परम मौन पर विश्राम लेती है। ग्रंथ का प्रत्येक अध्याय अपने आप में पूर्ण है और साधक को आत्म-साक्षात्कार के निकट ले जाने के लिए विस्तृत दृष्टांतों, गुरु-शिष्य संवादों, ध्यान-अभ्यासों और पारिभाषिक शब्दावली से अलंकृत है।

अंततः, यह महाग्रंथ आज के भ्रमित और थके हुए मानव समाज के लिए एक संजीवनी बूटी के समान है। यह उन सभी जिज्ञासुओं, मुमुक्षुओं और साधकों के लिए एक अनिवार्य मार्गदर्शिका है जो जीवन के अंतिम सत्य को जानने और जीने के अभिलाषी हैं। यह ग्रंथ आपको दुनिया छोड़ने की सलाह नहीं देता, बल्कि दुनिया में रहकर दुखों से अस्पर्शित रहने की दिव्य कला सिखाता है। यह सहज जीवन की वह नौका है जो आपको भवसागर के थपेड़ों से सुरक्षित बचाते हुए परम शांत, निरंजन और आनंदमय आत्म-स्वरूप में विश्रांति प्रदान करेगी।

विषय-सूची (अनुक्रमणिका)

अध्याय सं.	अध्याय का शीर्षक	पृष्ठ सं.
अध्याय 1	अखंड चेतना और साक्षी भाव — 'देखो ए जोगी'	08
अध्याय 2	अस्तित्व की अनवरत लीला और 'तथाता' का स्वीकार	13
अध्याय 3	भटकाव से मुक्ति और देह-भाव के पार जीवन	19
अध्याय 4	कर्म, अकर्ता भाव और समभाव का सरोवर	24

अध्याय सं.	अध्याय का शीर्षक	पृष्ठ सं.
अध्याय **5**	मन का मनोविज्ञान: स्मृति, स्वप्न और शाश्वत वर्तमान	29
अध्याय **6**	भीड़ में एकांत और अजनबीपन का सौंदर्य	33
अध्याय **7**	भक्ति की पराकाष्ठा और कृतज्ञता का नृत्य	38
अध्याय **8**	अष्टावक्र गीता और भारतीय ऋषि-परंपरा का निचोड़	42
अध्याय **9**	गोरखनाथ की सबदी और सहज-योग की धारा	48
अध्याय **10**	विश्व के रहस्यवादी शिखर: ताओ, ज़ेन, सूफी और कबाला	52
अध्याय **11**	वाणी का तप, मृत्यु का महा-उत्सव और अनंत का मौन	57
उपसंहार	जोगी के नाम अंतिम पाती	62
परिशिष्ट	संपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं संदर्भ कोश	63
पुस्तक परिचय	पुस्तक परिचय (बैक-कवर ब्लर्ब)	68

मुख्य भाग: सभी 11 बृहद अध्याय

अध्याय 1: अखंड चेतना और साक्षी भाव — 'देखो ए जोगी'

विचारों का प्रवाह और अछूता आकाश

मनुष्य का आंतरिक जगत विचारों, भावनाओं, तरंगों और स्मृतियों का एक अविरल, अबाध प्रवाह है। जिस प्रकार विशाल गगन में निरंतर मेघ आते और जाते रहते हैं—कभी श्वेत, कभी अति सघन काले, कभी आंधी-तूफान लाते हुए तो कभी शांतिपूर्ण तैरते हुए—परंतु उन बादलों की किसी भी हलचल से आकाश स्वयं कभी गंदा, गीला या प्रभावित नहीं होता, ठीक उसी प्रकार हमारी अंतरात्मा का अखंड चेतना रूपी स्वरूप भी विचारों के इस अपार झंझावात से सर्वदा अछूता रहता है। मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, आशंका और वासना की अनगिनत तरंगें उठती और विलीन होती रहती हैं, किंतु जो इन तरंगों को देख रहा है, जो इनका वास्तविक ज्ञाता है, वह साक्षी तत्त्व नित्य-शुद्ध, बुद्ध और मुक्त है।

अज्ञानता की अवस्था में हम विचारों के साथ इतने तदाकार हो जाते हैं कि मन की प्रत्येक तरंग को अपनी ही सत्ता मान बैठते हैं। जब मन में उदासी उठती है, तो हम कहते हैं "मैं उदास हूँ"; जब मन में भय जगता है, तो हम कहते हैं "मैं भयभीत हूँ"। यही तादात्म्य (Identification) समस्त दुखों, मानसिक संतापों और भ्रांतियों की मूल जड़ है। साक्षी चेतना का सीधा अर्थ है—विचारों के प्रवाह से स्वयं को थोड़ा पीछे हटाकर केवल एक निष्पक्ष द्रष्टा की भाँति देखना। विचार तुम्हारा स्वभाव नहीं हैं; वे केवल चेतना के पटल पर उभरने वाले क्षणिक दृश्य हैं। तुम दृश्य नहीं, द्रष्टा हो; तुम विषय नहीं, विषयी हो।

दर्पण की निर्मलता और मन का स्वभाव

एक स्वच्छ और निर्मल दर्पण के समक्ष जो भी वस्तु आती है—चाहे वह कोई सुंदर पुष्प हो या कोई कुरूप पत्थर, कोई राजा हो या कोई रंक—दर्पण उस आकृति को अपने भीतर पूर्ण स्पष्टता से प्रतिबिंबित करता है। परंतु जैसे ही वह वस्तु दर्पण के सामने से हट जाती है, दर्पण पुनः वैसा ही निष्कलंक और शून्य रह

जाता है। दर्पण कभी किसी प्रतिबिंब को पकड़कर नहीं रखता, न ही किसी सुंदर दृश्य से प्रेम करता है और न ही किसी विभत्स दृश्य से घृणा करता है। उसकी निर्मलता इसी बात में है कि वह केवल 'झलकाता' है, 'पकड़ता' नहीं।

हमारा वास्तविक स्वरूप भी इसी निर्मल दर्पण की भाँति है। परंतु मन का स्वभाव पकड़ने का है। मन सुंदर स्मृतियों को चिपका कर रखना चाहता है और अप्रिय स्मृतियों से भागना चाहता है। इस राग और द्वेष के कारण मन रूपी दर्पण पर धूल की सघन परतें जम जाती हैं। साक्षी भाव की साधना मन के इस पकड़ने के स्वभाव को शिथिल करती है। जब तुम साक्षी होते हो, तो तुम मन के विचारों, वासनाओं और शारीरिक संवेदनाओं को बिना किसी निर्णय (Judgment), बिना किसी मूल्यांकन और बिना किसी संपादन के केवल देखते हो। इस अ-चयनित जागरूकता (Choiceless Awareness) के क्षण में मन का दर्पण निष्कलंक होने लगता है।

'मैं कौन हूँ?' (कोऽहम्) की आत्म-अन्वेषण यात्रा

संसार का सबसे बड़ा और मौलिक प्रश्न 'कोऽहम्' अर्थात् 'मैं कौन हूँ?' है। जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य अनेक नामों, उपाधियों, संबंधों और भूमिकाओं को धारण करता है। हम कहते हैं—"मैं डॉक्टर हूँ, मैं पिता हूँ, मैं धनवान हूँ, मैं विद्वान हूँ।" परंतु यह सब हमारे बाह्य आवरण हैं। यदि इन सभी सामाजिक ठप्पों, उपाधियों और संबंधों को एक-एक करके हटा दिया जाए, तो अंत में क्या बचता है? महर्षि रमण की आत्म-विचार पद्धति इसी मूल प्रश्न पर प्रहार करती है।

जब हम गंभीरता से यह अन्वेषण करते हैं: "क्या मैं यह देह हूँ?" तो उत्तर मिलता है—नहीं, देह तो मेरी उपस्थिति के सामने बदलती रहती है; बाल्यकाल, युवावस्था और वृद्धावस्था में देह बदल गई, किंतु 'मैं' वही हूँ। "क्या मैं यह मन हूँ?"—नहीं, मन के विचार तो हर क्षण बदलते रहते हैं; कभी शांत, कभी अशांत, किंतु 'मैं' दोनों अवस्थाओं का ज्ञाता हूँ। "क्या मैं यह बुद्धि हूँ?"—नहीं, बुद्धि के निर्णय भी बदलते रहते हैं। इस प्रकार 'नेति-नेति' (यह भी नहीं, वह भी नहीं) की प्रक्रिया से गुज़रते हुए जब दृश्य जगत् के तमाम आलंबन गिर जाते हैं, तब जो विशुद्ध चेतना-मात्र शेष रह जाती है, वही हमारा 'अहं ब्रह्मास्मि' का वास्तविक स्वरूप है।

नाम-रूप के सामाजिक ठप्पों से मुक्ति

समाज व्यक्ति को जन्म लेते ही नाम, जाति, धर्म, राष्ट्रीयता और वर्ग के संकीर्ण चौखटों में बाँध देता है। ये नाम और रूप केवल व्यावहारिक जीवन के संचालन के लिए गढ़े गए संकेत मात्र थे, किंतु मनुष्य इन्हीं संकेतों को अपना परम अस्तित्व मान बैठा। इन्हीं नाम-रूपों के कारण संसार में राग-द्वेष, युद्ध, घृणा और विभाजन की दीवारें खड़ी हुईं। जब एक साधक 'देखो ए जोगी' के महा-उद्घोष को सुनता है, तो वह समझ जाता है कि ये सभी सामाजिक ठप्पे केवल वस्त्रों की भाँति हैं जिन्हें आत्मा ने धारण कर रखा है।

सामाजिक पहचान से मुक्ति का अर्थ समाज का त्याग करना या दायित्वों से भागना नहीं है, बल्कि अंतरात्मा के स्तर पर स्वयं को अनिकेत (बिना किसी संकीर्ण पहचान वाला) अनुभव करना है। ज्ञानी पुरुष समाज में रहता है, अपने कर्तव्यों का पूर्ण कुशलता से पालन करता है, परंतु भीतर से वह भली-भांति जानता है कि उसका वास्तविक नाम अनाम है, उसका वास्तविक रूप अरूप है, और उसकी वास्तविक जाति केवल चेतना है। इस बोध के आते ही मन के ऊपर से अहंकार का भारी बोझ उतर जाता है और जीवन में एक अपूर्व हलकापन आ जाता है।

रोज़मर्रा के जीवन में साक्षी साधना का अभ्यास

साक्षी भाव कोई ऐसी गूढ़ विद्या नहीं है जिसे केवल जंगलों या कंदराओं में जाकर ही साधा जा सके; इसे जीवन की सामान्य से सामान्य गतिविधियों में सहज ही उतारा जा सकता है। प्रातःकाल सोकर उठने से लेकर रात्रि में सोने तक, आप जो भी कार्य कर रहे हों—चाहे भोजन करना हो, मार्ग पर चलना हो, कार्यालय का काम करना हो या किसी से वार्तालाप करना हो—उसे पूर्ण होश और जागरूकता के साथ कीजिए।

अभ्यास की विधि अत्यंत सरल है:

1. जब आप चल रहे हों, तो केवल चलने की प्रक्रिया के प्रति सजग रहें; देखें कि पैर कैसे उठ रहे हैं और कैसे भूमि को स्पर्श कर रहे हैं।
2. जब क्रोध आए, तो क्रोध में बहने के बजाय एक शांत दर्शक की भाँति अपने भीतर उठती हुई उत्तेजना और शरीर में होती हलचल को देखें। क्रोध को दबाएँ नहीं, न ही उस पर कोई नैतिक प्रवचन दें; केवल उसे देखें।

3. आप पाएँगे कि ध्यान (साक्षी) की धूप पड़ते ही क्रोध, भय और काम रूपी बर्फ स्वतः पिघलने लगती है। बिना किसी संघर्ष के दृष्टा का जाग जाना ही साक्षी साधना का परम चमत्कार है।

संत कबीर की साखी:

"जोगी सोई जानिये, जो मन ही को मारै।

पाँचों इंद्री वश करै, अंतर जोति जारै।।"

उपनिषद महावाक्य:

"द्वौ सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्न्यो अभिचाकशीति।।"

– (मुण्डकोपनिषद 3.1.1)

भावार्थ: एक ही वृक्ष (शरीर) पर दो सुंदर पंछी निवास करते हैं जो आपस में सखा हैं।

इनमें से एक पंछी (जीव) वृक्ष के खट्टे-मीठे फलों को भोगता है,

जबकि दूसरा पंछी (परमात्मा/साक्षी) बिना कुछ खाए केवल शांत भाव से देखता रहता है।

विस्तृत दृष्टांत

1. आकाश और बादल: गगन अत्यंत विशाल और अनपेक्षित है। काले आंधी वाले बादल आए, पूरे वातावरण में अंधकार छा गया, बिजलियाँ कड़कीं। अज्ञानी को लगा कि अब गगन का अस्तित्व नष्ट हो गया। परंतु कुछ ही समय में हवा चली, बादल छँट गए और वही नीला, निष्कलंक गगन पुनः प्रकट हो गया। गगन कभी बदला ही नहीं था; बादल तो केवल उसकी सतह पर तैर रहे थे। इसी प्रकार आपकी साक्षी आत्मा पर दुख और चिंता के बादल तैरते हैं, किंतु आपकी मूल चेतना सदैव निष्कलंक रहती है।
2. दर्पण और प्रतिबिंब: एक प्राचीन राजप्रासाद में एक विशाल, अत्यंत पारदर्शी दर्पण लगा था। उस दर्पण के सामने एक भयंकर शेर आया और गरजा। दर्पण ने शेर को दर्शाया, किंतु डरा नहीं। फिर एक सुंदर नर्तकी आई और नृत्य किया। दर्पण ने नृत्य दर्शाया, किंतु आनंदित होकर बहका नहीं। अंत में दोनों चले गए, दर्पण शून्य रहा। हमारा साक्षी भाव भी इसी दर्पण की भाँति जगत की हर घटना को तटस्थता से प्रतिबिंबित करता है।
3. सिनेमा का पर्दा: सिनेमाघर में जब फिल्म चलती है, तो पर्दे पर कभी भीषण आग जलती दिखती है, कभी नदियाँ बहती हैं, तो कभी युद्ध होता है। दर्शक दृश्य देखकर भावुक होते हैं, किंतु फिल्म

समाप्त होने के बाद जब बत्तियाँ जलती हैं, तो देखा जाता है कि सफेद पर्दा न तो आग से जला, न पानी से भीगा और न ही उस पर रक्त का एक धब्बा लगा। पर्दा ज्यों का त्यों रहा। साक्षी चेतना ही वह पर्दा है जिस पर यह संपूर्ण संसार रूपी चलचित्र चल रहा है।

साधक-गुरु संवाद

- साधक: हे गुरुदेव! मैं साक्षी भाव का अभ्यास करने का प्रयास करता हूँ, परंतु कुछ ही क्षणों में विचारों की भयंकर बाढ़ आती है और मैं उसमें बह जाता हूँ। मैं साक्षी होने में असफल हो जाता हूँ।
- गुरु: वत्स! निराश होने की रंचमात्र आवश्यकता नहीं है। जब तुम यह कहते हो कि "मैं बह गया", तो ध्यान दो कि तुम्हें यह बोध कब हुआ?
- साधक: जब विचार की बाढ़ थोड़ी शांत हुई, तब मुझे होश आया कि अरे! मैं तो विचार में खो गया था।
- गुरु: बस, यही होश साक्षी का पुनरागमन है! बह जाने पर पश्चात्ताप मत करो, क्योंकि पश्चात्ताप भी मन का एक नया विचार ही है। जैसे ही होश आए, शांत होकर पुनः दृष्टा बन जाओ।
- साधक: परंतु गुरुदेव, मन में बहुत गंदे और अशांत विचार आते हैं, उनसे कैसे निपटूँ?
- गुरु: विचारों को 'गंदा' या 'अच्छा' कहना ही तुम्हारा मूल्यांकन है। साक्षी का अर्थ है—बिना किसी पूर्वाग्रह के देखना। जब तुम विचार को अच्छा या बुरा कहते हो, तो तुम साक्षी नहीं रहते, तुम न्यायाधीश बन जाते हो। तुम केवल इतना देखो कि विचार आ रहा है और जा रहा है।
- साधक: क्या केवल देखने से विचार बंद हो जाएँगे?
- गुरु: तुम्हारा उद्देश्य विचारों को बंद करना नहीं, बल्कि विचारों से अपनी असंगता को पहचानना है। जब तुम दृष्टा बन जाते हो, तो विचारों को मिलने वाली तुम्हारी ऊर्जा की आपूर्ति कट जाती है। ऊर्जा के अभाव में विचार स्वयं ही निष्प्राण होकर गिर जाते हैं।

चिंतन-सूत्र

1. "मैं विचार नहीं हूँ, मैं वह शून्य स्थान हूँ जिसमें विचार उत्पन्न और विलीन होते हैं।"
2. "दृश्य निरंतर बदलता है, द्रष्टा कभी नहीं बदलता।"
3. "संसार की प्रत्येक वस्तु का त्याग किया जा सकता है, किंतु दृष्टा का त्याग कभी संभव नहीं क्योंकि त्याग करने वाला स्वयं वही है।"
4. "निर्णय-हीन जागरूकता ही परम ध्यान है।"
5. "साक्षी भाव में स्थिति ही वास्तविक संन्यास है, गेरुए वस्त्र तो केवल एक प्रतीक हैं।"

पारिभाषिक शब्दावली एवं पाद-टिप्पणियाँ

1. साक्षी **(Sakshi):** वह चेतना जो किसी भी घटना, विचार या संवेदना में लिप्त हुए बिना उसे केवल तटस्थ भाव से देखती है।
2. अद्वैत **(Advaita):** वह दर्शन जो यह मानता है कि जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है; केवल एक ही परम सत्ता विद्यमान है।
3. तादात्म्य **(Identification):** स्वयं को अपने शरीर, मन, भावनाओं या बाह्य उपाधियों के साथ भूल से एक मान लेना।
4. नेति-नेति **(Neti-Neti):** उपनिषदों की एक निषेधात्मक पद्धति, जिसका अर्थ है "यह भी नहीं, वह भी नहीं", ताकि सत्य को खोजा जा सके।
5. अ-चयनित जागरूकता **(Choiceless Awareness):** बिना किसी पसंद-नापसंद या राग-द्वेष के चेतना को हर क्षण की वास्तविकता के प्रति खुला रखना।
6. अहंकार **(Ego):** 'मैं' होने का वह आभासी बोध जो चेतना को सीमाबद्ध और सीमित महसूस कराता है।
7. अनहद नाद **(Anahad Naad):** अंतर्जगत में बिना किसी आघात के स्वतः गूंजने वाली परम अनाहत ध्वनि।
8. चित्त **(Chitta):** मन का वह अवचेतन पटल जहाँ पूर्व जन्मों और इस जन्म की समस्त स्मृतियाँ तथा संस्कार संचित रहते हैं।

अध्याय 2: अस्तित्व की अनवरत लीला और 'तथाता' का स्वीकार

प्रकृति की सहज लय और ब्रह्मांडीय संगीत

यदि हम खुले नेत्रों से और अहंकार-रहित मन से इस विशाल सृष्टि का अवलोकन करें, तो हमें चारों ओर एक अद्भुत, दिव्य और अति सूक्ष्म सुव्यवस्था दिखाई देगी। सूर्य का नियत समय पर उगना और ढलना, ऋतुओं का अनवरत चक्र, बीजों का अंकुरित होकर विशाल वृक्ष बनना, और समुद्र में ज्वार-भाटा का

आना—यह सब किसी अति-प्राकृतिक बुद्धि के निर्देशन में घटित हो रहा है। इस ब्रह्मांडीय नृत्य में कहीं कोई तनाव नहीं है, कहीं कोई जल्दबाजी नहीं है। प्रकृति का एक-एक कणांश अपनी सहज लय में थिरक रहा है।

परंतु मनुष्य ने स्वयं को इस ब्रह्मांडीय संगीत से अलग कर लिया है। अपने छोटे से अहम् के कारण वह संपूर्ण अस्तित्व के विरुद्ध अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं को थोपने की चेष्टा करता है। वह नदी के प्रवाह के साथ बहने के बजाय धारा के विपरीत तैरने का व्यर्थ प्रयास करता है। यही संघर्ष दुखों का एकमात्र कारण है। जब मनुष्य प्रकृति और अस्तित्व की इस परम लयबद्धता को पहचान लेता है, तो उसके भीतर का व्यक्तिगत संघर्ष समाप्त हो जाता है और वह ब्रह्मांडीय संगीत की एक तान बन जाता है।

यथार्थ का बिना शर्त स्वीकार: 'तथाता'

'तथाता' (Suchness / Acceptance) अध्यात्म का वह परम गुप्त कुंजी-शब्द है, जिसे भगवान बुद्ध और ताओवादी विचारकों ने जीवन का आधार बताया। 'तथाता' का अर्थ है—जो जैसा है, उसे उसी रूप में, बिना किसी शर्त, बिना किसी विरोध और बिना किसी शिकायत के पूर्णतः स्वीकार कर लेना। जब वर्षा होती है, तो यह न कहना कि "आज धूप क्यों नहीं निकली"; जब ग्रीष्म की तपन हो, तो यह न कहना कि "इतनी गर्मी क्यों है"। जीवन में जो भी परिस्थिति, जो भी क्षण, जो भी व्यक्ति या जो भी अनुभव उपस्थित हो, उसे अस्तित्व का प्रसाद मानकर सहर्ष स्वीकार कर लेना ही 'तथाता' है।

मनुष्य का मन सदैव 'क्या है' (What is) के विरुद्ध 'क्या होना चाहिए' (What should be) की कल्पना में उलझा रहता है। यह 'होना चाहिए' का आग्रह ही मानसिक संताप उत्पन्न करता है। जब आप यथार्थ से लड़ते हैं, तो आप पराजित होने के लिए अभिशप्त होते हैं, क्योंकि यथार्थ आपकी व्यक्तिगत इच्छाओं से बहुत बड़ा है। परंतु जिस क्षण आप यथार्थ के आगे अपने अहम् को झुका देते हैं और कहते हैं—"जो है, यही सही है"—उसी क्षण समस्त मानसिक द्वंद्व छूमंतर हो जाते हैं। स्वीकार में एक अपूर्व विश्रांति है।

आग्रहों और अपेक्षाओं के भारी बस्ते का त्याग

मानव मन आग्रहों (Insistences) और अपेक्षाओं (Expectations) का एक बहुत भारी बस्ता अपनी पीठ पर लादे फिरता है। हमारी अपेक्षाएँ होती हैं कि हमारे परिजन हमारे अनुसार आचरण करें, समाज

हमारी प्रशंसा करे, परिस्थितियाँ सदैव हमारे अनुकूल रहें और सफलता हमारे कदम चूमे। परंतु यह संसार हमारे व्यक्तिगत खाकों और योजनाओं के अनुसार चलने के लिए बाध्य नहीं है। जब हमारी अपेक्षाएँ टूटती हैं, तो हमारा हृदय निराशा, क्रोध और अवसाद से भर जाता है।

इन आग्रहों को छोड़ना ही संन्यास का वास्तविक मर्म है। इसका अर्थ यह नहीं कि आप जीवन में कोई लक्ष्य न रखें या कर्म करना छोड़ दें, बल्कि इसका अर्थ यह है कि कर्म पूरे मनोयोग से करें, किंतु उसके परिणाम के प्रति कोई दुराग्रह न रखें। जब आप अपनी अपेक्षाओं के बस्ते को उतारकर फेंक देते हैं, तो आपकी आत्मा हलकी हो जाती है। आप जीवन के प्रत्येक मोड़ पर मिलने वाले सरप्राइज का आनंद लेने लगते हैं, चाहे वह मोड़ सुखद हो या दुखद।

तुलना, प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या से मुक्ति

हमारी शिक्षा प्रणाली, सामाजिक संरचना और मानसिक संस्कार हमें बचपन से ही तुलना (Comparison) करना सिखाते हैं। हमें सिखाया जाता है कि हम दूसरों से बेहतर बनें, अधिक धन कमाएँ, अधिक ख्याति प्राप्त करें। इस तुलना के कारण ही ईर्ष्या, द्वेष और प्रतिस्पर्धा की विषैली लपटें हमारे भीतर सुलगती रहती हैं। हम इस बात से दुखी नहीं होते कि हमारे पास क्या नहीं है, बल्कि हम इस बात से दुखी होते हैं कि दूसरे के पास हमसे अधिक क्यों है!

अध्यात्म हमें यह अद्भुत बोध कराता है कि इस अस्तित्व में कोई भी दो व्यक्ति या वस्तुएँ समान नहीं हैं। हर व्यक्ति अद्वितीय (Unique) है। गुलाब का पुष्प गेंदे के पुष्प से सुंदर होने की प्रतिस्पर्धा नहीं करता, न ही बरगद का वृक्ष नीम के वृक्ष से तुलना करता है। दोनों अपने-अपने स्थान पर पूर्ण और सुंदर हैं। जब आप अपनी अद्वितीयता को पहचान लेते हैं और दूसरों की तुलना करना बंद कर देते हैं, तो ईर्ष्या का विष स्वतः समाप्त हो जाता है। आप दूसरों की समृद्धि और प्रसन्नता में भी अपनी ही प्रसन्नता का अनुभव करने लगते हैं।

प्रतिकूलता को प्रसाद मानने की कला

साधारण मनुष्य अनुकूलता में प्रसन्न होता है और प्रतिकूलता में रोता है। परंतु एक ज्ञानी और जोगी वह है जो अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनों को परमात्मा का प्रसाद मानता है। यदि अनुकूलता हमारे जीवन में सुख और विश्राम लाती है, तो प्रतिकूलता हमारे भीतर धैर्य, सहनशीलता, विवेक और आत्म-बल का

निर्माण करती है। सोने को जब तक भीषण अग्नि में न तपाया जाए, तब तक उसकी अशुद्धियाँ दूर नहीं होतीं और वह कुंदन नहीं बनता।

प्रतिकूल परिस्थितियाँ वास्तव में हमारे अहम् और हमारी सहनशक्ति की परीक्षा होती हैं। वे हमें यह सिखाने आती हैं कि हमारे भीतर अभी कहाँ-कहाँ आसक्ति और दुर्बलता बची हुई है। जब जीवन में कोई दुख, रोग, क्षति या अपमान आए, तो भागे नहीं; न ही ईश्वर को कोसें। हाथ जोड़कर कहें—"हे प्रभु! इस कसौटी के माध्यम से आप मुझे क्या सिखाना चाहते हैं? मैं आपकी इस दी हुई परिस्थिति को नतमस्तक होकर स्वीकार करता हूँ।" यह दृष्टिकोण अपनाते ही प्रतिकूलता का विष समाप्त हो जाता है और वह परम अमृत में बदल जाता है।

गोरखनाथ की सबदीः

"हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानम्।

अहनिशि कथिबा ब्रह्म गियानम्।।

हसै खेलै न करै मन भंग।

ते निहचल सदा नाथ के संग।।"

श्रीमद्भगवद्गीता श्लोकः

"दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।

वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।"

– (अध्याय 2, श्लोक 56)

भावार्थः जो दुखों की प्राप्ति में मन में उद्वेग से रहित रहता है,

सुखों की प्राप्ति में सर्वथा निष्स्पृह है, तथा जिसके राग, भय और क्रोध

नष्ट हो गए हैं–वह मुनि स्थिर बुद्धि वाला कहा जाता है।

विस्तृत दृष्टांत

1. बहती नदी: एक नदी पहाड़ों से निकलकर मैदानों की ओर बहती है। उसके मार्ग में विशाल चट्टानें, मोड़ और गड्ढे आते हैं। नदी चट्टानों से लड़ती नहीं, न ही यह शिकायत करती है कि मार्ग इतना कठिन क्यों है। वह नम्रता से चट्टानों के बगल से अपना मार्ग बना लेती है या उनके ऊपर से बह निकलती है। नदी का यह सहज स्वीकार ही उसे अंततः अनंत महासागर तक पहुँचा देता है।

2. वर्षा और छतरी: जब मूसलाधार वर्षा होती है, तो मूर्ख व्यक्ति आकाश की ओर देखकर चिल्लाता है और वर्षा रोकने की माँग करता है। परंतु समझदार व्यक्ति शांति से छतरी खोल लेता है और अपनी यात्रा जारी रखता है। छतरी खोलना 'तथाता' और विवेक का संतुलन है—वर्षा का स्वीकार और सहज जीवन का समन्वय।
3. बांस की कोमलता: जब भीषण आंधी-तूफान आता है, तो बड़े-बड़े कठोर और घमंडी वृक्ष अपनी अकड़ के कारण जड़ से उखड़कर गिर जाते हैं। परंतु लचकदार बांस का पौधा आंधी के आगे झुक जाता है। जब तूफान गुजर जाता है, तो बांस पुनः सीधा खड़ा हो जाता है, पूरी तरह सुरक्षित। 'तथाता' हमें वही लचीलापन और नम्रता प्रदान करती है।

साधक-गुरु संवाद

- साधक: महाराज! जब जीवन में कोई भयंकर दुख या प्रियजन का वियोग आता है, तो क्या उसे भी 'तथाता' के नाम पर चुपचाप स्वीकार कर लेना चाहिए? क्या यह कायरता नहीं है?
- ** गुरु:** वत्स! 'तथाता' कायरता या निष्क्रियता (Passivity) नहीं है। यह आंतरिक स्वीकार (Internal Acceptance) है। जब तुम घटना के अस्तित्व को स्वीकार कर लेते हो, तो तुम्हारी मानसिक ऊर्जा विरोध और रोने-धोने में व्यर्थ नहीं होती। उस बची हुई शांत ऊर्जा से तुम उस परिस्थिति का सबसे विवेकपूर्ण समाधान निकाल सकते हो।
- साधक: परंतु स्वीकार करना बहुत कठिन होता है, मन विद्रोह करता है!
- गुरु: मन का विद्रोह ही तो अहम् का लक्षण है। अहम् चाहता है कि दुनिया उसकी शर्तों पर चले। जब तुम यह जान लेते हो कि तुम इस ब्रह्मांड के केंद्र नहीं हो, बल्कि एक छोटे से अंश हो, तो स्वीकार सहज हो जाता है।
- साधक: क्या 'तथाता' से जीवन में ठहराव या आलस्य नहीं आ जाएगा?
- गुरु: कदापि नहीं! आलस्य अहम् की एक ग्रंथि है। 'तथाता' से तो अति-सक्रियता (Total Action) का जन्म होता है, क्योंकि अब कर्म के पीछे कोई मानसिक तनाव या विफलता का भय नहीं रहता।

चिंतन-सूत्र

1. "जीवन जैसी परिस्थितियाँ लाता है, उन्हें बिना किसी शिकायत के सहर्ष स्वीकार करना ही परम तप है।"
2. "तुलना अंत करती है आनंद का, और जन्म देती है ईर्ष्या का।"

3. "जो बदल सकता है उसे बदलो, जो नहीं बदल सकता उसे स्वीकार करो, और दोनों के बीच भेद करने का विवेक प्राप्त करो।"
4. "अहंकार अकड़ में टूटता है, समर्पण नम्रता में खिलता है।"
5. "संसार की हर प्रतिकूलता तुम्हारी आत्म-शक्ति को कसने का एक पत्थर है।"

पारिभाषिक शब्दावली एवं पाद-टिप्पणियाँ

1. तथाता **(Tathata):** यथार्थ का बिना किसी द्वंद्व या शर्त के पूर्ण और सहज स्वीकार; ताओवाद और बौद्ध दर्शन का मूल सिद्धांत।
2. समभाव **(Equanimity):** सुख-दुख, लाभ-हानि, मान-अपमान जैसी विपरीत परिस्थितियों में चित्त का अविचल और शांत रहना।
3. अनुकूलता **(Favorability):** मन के अनुकूल या सुखद परिस्थितियाँ।
4. प्रतिकूलता **(Adversity):** मन के प्रतिकूल या कष्टदायक परिस्थितियाँ।
5. अपरिग्रह **(Non-Possessiveness):** अनावश्यक वस्तुओं, विचारों और इच्छाओं का संचय न करना।
6. अहंकार-विसर्जन **(Ego Dissolution):** अपने 'मैं-पन' के झूठे बोध को परम सत्ता में लीन कर देना।
7. प्रारब्ध **(Prarabdha):** पूर्व जन्मों के वे कर्म जिनका फल वर्तमान जीवन में भोगना तय हो चुका है।
8. अद्वैत दृष्टि **(Advaitic Vision):** सर्वत्र एक ही चेतना को देखना और भिन्नता के भ्रम से मुक्त होना।

अध्याय 3: भटकाव से मुक्ति और देह-भाव के पार जीवन

बाहरी तीर्थों की व्यर्थता और हृदय-गुहा की अंतर्यात्रा

मनुष्य युगों-युगों से शांति, आनंद और ईश्वर की खोज में दर-दर भटक रहा है। वह हिमालय की चोटियों पर चढ़ता है, पवित्र नदियों में स्नान करता है, मंदिरों, मस्जिदों और गिरजाघरों के चक्कर काटता है, और कठोर अनुष्ठान करता है। परंतु यह सब बाह्य दौड़ तब तक व्यर्थ सिद्ध होती है जब तक साधक अपने भीतर की ओर मुड़कर नहीं देखता। ईश्वर कोई बाह्य वस्तु नहीं है जो किसी भौगोलिक स्थान पर छिपी हुई हो; वह तो तुम्हारी अपनी ही चेतना की गहराई में, तुम्हारी 'हृदय-गुहा' में सदा से विद्यमान है।

संत कबीर ने अत्यंत तीखे शब्दों में कहा है—"मोको कहाँ ढूँढे रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।" बाह्य तीर्थों की यात्रा मन को थोड़ी देर के लिए बहला तो सकती है, किंतु वह वास्तविक रूपांतरण नहीं ला सकती। वास्तविक तीर्थ तो तुम्हारे भीतर का मौन है, तुम्हारी अपनी साक्षी आत्मा है। जब तक तुम बाहर भटकते रहोगे, तब तक भटकाव बढ़ता ही जाएगा। जिस क्षण तुम अपनी दृष्टि को 180 डिग्री मोड़कर अंतर्मुखी (Introvert) हो जाते हो, उसी क्षण अंतर्यात्रा का शुभारंभ होता है और समस्त भटकाव समाप्त हो जाते हैं।

संसार की क्षणभंगुरता और अनित्यता का बोध

संसार का मूल स्वभाव ही परिवर्तनशीलता है। यहाँ कुछ भी स्थिर नहीं है—न धन, न यौवन, न संबंध, न यह देह और न ही जीवन की परिस्थितियाँ। जो आज है, वह कल नहीं रहेगा; जो कल था, वह आज नहीं है। इस जगत को संस्कृत में 'संसार' कहा गया है, जिसका शाब्दिक अर्थ ही है—"जो निरंतर सरक रहा है, बदल रहा है।" इसे 'जगत्' भी कहते हैं, जिसका अर्थ है—"जो निरंतर गमनशील है।"

अज्ञानी मनुष्य इस क्षणभंगुर और अनित्य जगत् में स्थायित्व (Permanence) ढूँढने की भूल करता है। वह अनित्य वस्तुओं से नित्य आनंद की आशा लगा बैठता है और जब वे वस्तुएँ नष्ट होती हैं, तो वह रोता है। विवेक का जागना इसी बोध से प्रारंभ होता है कि यह संसार केवल एक सराय (Inn) की भाँति है, जहाँ हम कुछ समय के लिए ठहरे हुए यात्री हैं। अनित्यता का यह बोध मन में वैराग्य का बीजारोपण करता है

और हमें उस शाश्वत, अविनाशी परमात्मा की ओर मोड़ने में सहायता करता है जो इस परिवर्तनशील जगत् का नित्य आधार है।

स्ट्रेचर पर लेटा साक्षी — रोग और पीड़ा के पार चेतना

जब शरीर में कोई गंभीर बीमारी आती है या मनुष्य दुर्घटनाग्रस्त होकर अस्पताल के स्ट्रेचर पर लेटा होता है, तब देह-भाव अपनी चरम सीमा पर होता है। पीड़ा, दर्द और असहायता मन को पूरी तरह घेर लेती है। परंतु यही वह क्षण है जहाँ साक्षी साधना का सबसे कठिन और महान परीक्षण होता है। ज्ञानी साधक पीड़ा के क्षणों में भी यह भेद करना जानता है कि "पीड़ा शरीर और मन में हो रही है, परंतु मैं उस पीड़ा का जानने वाला चेतना-मात्र हूँ।"

'स्ट्रेचर पर लेटा साक्षी' का अर्थ है—देह की अत्यंत विषम और पीड़ादायक स्थिति में भी स्वयं को देह से पृथक अनुभव करना। दर्द एक शारीरिक संवेदना (Physical Sensation) है, परंतु उस दर्द से 'दुखी होना' मन का तादात्म्य है। जब आप दर्द को बिना किसी घबराहट के, एक वैज्ञानिक की भाँति निष्पक्ष होकर केवल देखते हैं, तो दर्द की तीव्रता आधी रह जाती है और आप अनुभव करते हैं कि आपकी आत्मा रोग-मुक्त, दुख-मुक्त और सर्वदा स्वस्थ है। देह बीमार हो सकती है, किंतु चेतना कभी बीमार नहीं होती।

भय की जड़ और स्वामित्व के भ्रम का विसर्जन

मनुष्य के जीवन में समस्त भयों की मूल जड़ 'मृत्यु का भय' (अभिनिवेश) और 'खोने का भय' है। हम भयभीत रहते हैं कि हमारा धन न छिन जाए, हमारा पद न चला जाए, हमारे प्रियजन हमें छोड़कर न चले जाएँ, या हमारा शरीर नष्ट न हो जाए। यह भय केवल इसलिए पैदा होता है क्योंकि हमने संसार की वस्तुओं और व्यक्तियों पर अपने 'स्वामित्व' (Ownership) का झूठा भ्रम पाल रखा है। हम भूल जाते हैं कि इस संसार में हम कुछ भी साथ लेकर नहीं आए थे और न ही कुछ साथ लेकर जाएँगे।

स्वामित्व का विसर्जन ही निर्भयता का एकमात्र मार्ग है। जब आप यह समझ जाते हैं कि यहाँ का सब कुछ परमात्मा का है, आपका कुछ भी नहीं—आप तो केवल एक 'ट्रस्टी' (Trustee) या देखभाल करने वाले हैं—तो खोने का भय समाप्त हो जाता है। जब घर आपका है ही नहीं, तो उसके गिर जाने का भय कैसा? जब यह देह आपकी अपनी उपार्जित संपत्ति नहीं है, बल्कि प्रकृति का एक उपहार है, तो इसके छूटने का भय कैसा? स्वामित्व का भ्रम गिरते ही मनुष्य अभय के परम पद को प्राप्त कर लेता है।

देह में रहते हुए भी विदेह मुक्ति का अनुभव

भारतीय दर्शन में 'जीवन्मुक्ति' या 'विदेह स्थिति' का अत्यंत महिमामय वर्णन मिलता है। विदेह का अर्थ यह नहीं है कि शरीर गिर गया है, बल्कि इसका अर्थ यह है कि शरीर के रहते हुए भी शरीर के प्रति आसक्ति और अहम् भाव पूरी तरह समाप्त हो गया है। राजा जनक को 'विदेह' कहा जाता था क्योंकि वे अपार राजसी ठाट-बाट और महल में रहते हुए भी भीतर से पूरी तरह असंग और नित्य-मुक्तात्मा थे।

विदेह स्थिति में साधक देह के समस्त कर्म करता है—भोजन करता है, सोता है, वार्तालाप करता है—किंतु वह जानता है कि यह सब प्रकृति के गुणों का प्रकृति के गुणों में बर्तना है ('गुणा गुणेषु वर्तन्त')। वह देह के सुख में अति-प्रसन्न नहीं होता और देह के दुख में कातर नहीं होता। वह देह रूपी वस्त्र को पहने हुए भी स्वयं को नग्न (निरावरण) आत्मा अनुभव करता है। यही जीवन की परम मुक्ति है जो मृत्यु के बाद नहीं, बल्कि इसी जीवन में, इसी क्षण प्राप्त की जा सकती है।

संत कबीर का दोहा:

"कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढै बन माहि।

ऐसे घट-घट राम हैं, दुनिया देखै नाहि।।"

श्रीमद्भगवद्गीता श्लोक:

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णा न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।"

– (अध्याय 2, श्लोक 22)

भावार्थ: जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नए वस्त्रों को ग्रहण करता है,

वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नए शरीरों को प्राप्त होती है।

विस्तृत दृष्टांत

1. कस्तूरी मृग: एक कस्तूरी मृग के अपनी ही नाभि में परम सुगंधित कस्तूरी विद्यमान होती है। परंतु उस सुगंध से व्याकुल होकर वह मृग उसे जंगलों, झाड़ियों और पत्थरों में ढूँढता फिरता है। वह थककर चूर हो जाता है, लहूलुहान हो जाता है, परंतु सुगंध बाहर नहीं मिलती। अंत में जब वह

निराश होकर गिरता है और अपनी नाभि को सूँघता है, तो उसे सत्य का बोध होता है। मनुष्य की स्थिति भी इसी कस्तूरी मृग जैसी है।

2. सराय का यात्री: एक यात्री किसी सराय (होटल) में रुकता है। वह सराय के सुंदर कमरों, पलंगों और आभूषणों का उपयोग करता है, किंतु वह कभी उन्हें अपना घर नहीं मानता। उसे पता है कि प्रातःकाल होते ही उसे अपनी यात्रा पर आगे निकल जाना है। इसलिए न तो उसे सराय की वस्तुओं से मोह होता है और न ही उन्हें छोड़ने का दुख। ज्ञानी पुरुष इस संसार को ऐसी ही एक सराय मानता है।
3. स्ट्रेचर पर लेटा साधक: एक सन्यासी का भीषण एक्सीडेंट हो गया और उसे स्ट्रेचर पर लिटाकर अस्पताल लाया गया। उसका पैर बुरी तरह टूट चुका था और असह्य पीड़ा हो रही थी। डॉक्टरों ने देखा कि सन्यासी के चेहरे पर कोई शिकन नहीं थी, वे शांत मुस्कुरा रहे थे। डॉक्टर ने पूछा—"क्या आपको दर्द नहीं हो रहा?" सन्यासी ने कहा—"दर्द शरीर में बहुत तीव्र है, डॉक्टर साहब! परंतु मैं उस दर्द का साक्षी हूँ, मैं दर्द नहीं हूँ। दर्द नीचे पड़ा है, मैं ऊपर से देख रहा हूँ।"
4. पुराने वस्त्र बदलना: जब आपके कपड़े गंदे या फटे हो जाते हैं, तो आप उन्हें उतारकर नए कपड़े पहन लेते हैं। क्या कपड़े बदलते समय आप रोते हैं? नहीं! क्योंकि आप जानते हैं कि कपड़े आप नहीं हैं। इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष मृत्यु के समय जर्जर देह को ऐसे ही सहजता से त्याग देता है जैसे कोई पुराने वस्त्र बदल रहा हो।

साधक-गुरु संवाद

- साधक: भगवन्! मैं यह तो समझता हूँ कि मैं देह नहीं हूँ, परंतु जब दाँत में तीव्र दर्द होता है या कोई बीमारी आती है, तो सारा ज्ञान धरा का धरा रह जाता है और ध्यान केवल दर्द पर ही केंद्रित हो जाता है। इससे कैसे निकलूँ?
- गुरु: प्रिय वत्स! अभ्यास की कमी के कारण ऐसा होता है। जब तुम स्वस्थ हो, तब देह से पृथक होने का अभ्यास नहीं करते, इसीलिए बीमारी के समय तादात्म्य गहरा हो जाता है।
- साधक: स्वस्थ रहते हुए यह अभ्यास कैसे किया जाए?
- गुरु: जब तुम शांत बैठे हो, तो भाव करो कि "यह देह मिट्टी का एक ढाँचा है। इसके भीतर जो श्वास चल रही है, वह वायु है। इसके भीतर जो अग्नि है, वह ताप है। परंतु इन पाँच तत्वों के पीछे जो 'जानने वाला' है, वह मैं हूँ।" धीरे-धीरे यह बोध इतना गहरा हो जाएगा कि तीव्र पीड़ा के समय भी तुम्हारी साक्षी धारा टूटेगी नहीं।
- साधक: क्या देह-भाव से मुक्त होने के बाद व्यक्ति अपने शरीर की देखभाल करना छोड़ देता है?

- गुरु: नहीं! वह देह की देखभाल और अधिक सम्यक रूप से करता है, परंतु मालिक की भाँति नहीं, बल्कि ईश्वर द्वारा दी गई एक धरोहर की भांति। वह देह को एक पवित्र मंदिर मानकर उसकी रक्षा करता है।

चिंतन-सूत्र

1. "बाहर भटकना ही अज्ञान है, भीतर मुड़ना ही परम ज्ञान है।"
2. "यह संसार तुम्हारा स्थायी घर नहीं, केवल एक अल्पकालिक सराय है।"
3. "दर्द शरीर का धर्म है, उससे दुखी होना मन का भ्रम है; तुम दोनों से परे साक्षी हो।"
4. "जिस दिन स्वामित्व का भाव गिरा, उसी दिन समस्त भयों का अंत हो गया।"
5. "देह में रहते हुए भी स्वयं को असंग और अछूता अनुभव करना ही जीवन्मुक्ति है।"

पारिभाषिक शब्दावली एवं पाद-टिप्पणियाँ

1. हृदय-गुहा **(Cave of the Heart):** चेतना का वह आभ्यंतरिक सूक्ष्म केंद्र जहाँ परमात्मा का नित्य निवास माना गया है।
2. अनित्यता **(Impermanence):** संसार की हर वस्तु और परिस्थिति का निरंतर परिवर्तनशील और क्षणभंगुर होने का स्वभाव।
3. विदेह स्थिति **(Videha State):** देह के रहते हुए भी देह के अहम् और आसक्ति से पूर्णतः मुक्त होने की दशा।
4. अभिनिवेश **(Fear of Death):** पतंजलि योगसूत्र के अनुसार पाँच क्लेशों में से एक—मृत्यु का सहज और गहरा भय।
5. असंगता **(Detached State):** किसी भी बाह्य विषय, वस्तु या मानसिक अवस्था से अलिप्त रहने का गुण।
6. जीवन्मुक्ति **(Liberation while Alive):** जीवित रहते हुए ही संसार के समस्त बंधनों और अज्ञान से सदा के लिए मुक्त हो जाना।
7. वैराग्य **(Dispassion):** संसार के अनित्य भोगों के प्रति विरक्ति और सत्य के प्रति अनन्य अनुराग।
8. अन्वेषण **(Self-Inquiry):** 'मैं कौन हूँ?' के माध्यम से अपने वास्तविक आत्म-स्वरूप की निरंतर खोज।

अध्याय 4: कर्म, अकर्ता भाव और समभाव का सरोवर

'मैं कुछ नहीं करता' का परम विश्राम (नैष्कर्म्य सिद्धि)

संसार में समस्त दुखों और तनावों का मूल कारण यह अहम्-भाव है कि "मैं कर्ता हूँ" (I am the doer)। जब मनुष्य किसी कार्य की सफलता या विफलता का संपूर्ण दायित्व अपने अहंकार पर ले लेता है, तो वह गर्व या ग्लानि की चक्की में पिसने लगता है। श्रीमद्भगवद्गीता का केंद्रीय संदेश यही है कि वास्तव में मनुष्य कुछ नहीं करता; समस्त कार्य प्रकृति के गुणों, ईश्वरीय विधान और ब्रह्मांडीय ऊर्जा के संचालन द्वारा स्वतः घटित हो रहे हैं।

'नैष्कर्म्य सिद्धि' का अर्थ कर्मों का त्याग कर देना या हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाना नहीं है, बल्कि कर्म करते हुए भी भीतर इस बोध को गहरा करना है कि "कर्ता मैं नहीं, परम सत्ता है; मैं तो केवल एक माध्यम हूँ।" जब 'मैं-पन' का कर्ता भाव विलीन हो जाता है, तो कर्म का भारी बोझ समाप्त हो जाता है। साधक अति-सक्रियता में रहकर भी परम विश्राम (Total Relaxation) की स्थिति में बना रहता है। यही 'कर्म में अकर्म' का परम रहस्य है।

आकाश में उड़ते पक्षी की भाँति निष्काम कर्मयोग

एक पक्षी जब अनंत नीले आकाश में अपने पंख फैलाकर उड़ता है, तो वह आकाश के वक्षस्थल पर अपने पैरों के कोई निशान या रेखाएँ नहीं छोड़ता। उसके उड़ने में एक सहज सौंदर्य होता है, किंतु कोई पदचिह्न नहीं बनता। इसी प्रकार एक निष्काम कर्मयोगी संसार में अपने दायित्वों का निर्वहन करता है, विशाल साम्राज्य खड़े करता है, लोक-कल्याण के कार्य करता है, परंतु उसके मन के पटल पर उन कर्मों के संस्कार या आसक्ति के कोई निशान नहीं बनते।

सकाम कर्म (फलेच्छा से किया गया कर्म) मनुष्य को संस्कारों के जाल में बाँधता है और पुनर्जन्म का चक्र निर्मित करता है। इसके विपरीत, निष्काम कर्म (बिना किसी फल की आसक्ति के किया गया कर्तव्य)

मनुष्य को तत्क्षण मुक्त करता है। जब आप परिणाम की चिंता छोड़कर केवल वर्तमान क्षण के कर्म में अपना 100% झोंक देते हैं और फल को परमात्मा के चरणों में समर्पित कर देते हैं, तो कर्म ही पूजा और ध्यान बन जाता है।

सुख-दुख, लाभ-हानि व जय-पराजय के पार निर्द्वंद्व चेतना

यह संसार द्वंद्वों (Dualities) का एक अनवरत मेला है। यहाँ जहाँ सुख है वहाँ दुख की छाया है, जहाँ लाभ है वहाँ हानि का भय है, और जहाँ मान है वहाँ अपमान की आशंका है। साधारण मनुष्य इन द्वंद्वों के हिंडोले में निरंतर झूलता रहता है—अनुकूलता मिलने पर हर्ष से पागल हो जाता है और प्रतिकूलता मिलने पर विषाद में डूब जाता है। इस उथल-पुथल से उसका चित्त कभी शांत नहीं हो पाता।

अद्वैत साधक द्वंद्वों से परे 'निर्द्वंद्व' चेतना में स्थापित होता है। वह जानता है कि सुख और दुख मन की दो तरंगे मात्र हैं जो आती हैं और चली जाती हैं। वह सुख में अति-प्रसन्न होकर अपने होश नहीं खोता और दुख में कातर होकर अपनी धीरता नहीं गँवाता। जैसे समुद्र की गहराई में लहरों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वैसे ही निर्द्वंद्व साधक का चित्त सुख-दुख के थपेड़ों के बीच भी समभाव (Equanimity) के शांत सरोवर की भाँति स्थिर रहता है।

अहंकार का विसर्जन और ईश्वरीय उपकरण बनना

जब तक मनुष्य के भीतर यह घमंड रहता है कि "मेरे बिना यह कार्य नहीं हो सकता" या "मैंने ही परिवार/संस्था को संभाल रखा है", तब तक वह ईश्वर की अपार शक्ति को अपने जीवन में प्रवाहित नहीं होने देता। अहंकार एक दीवार की भाँति है जो परम चेतना के प्रकाश को रोकती है। जिस क्षण यह अहंकार विसर्जित होता है, उसी क्षण साधक परमात्मा का एक खाली उपकरण (Instrument) बन जाता है।

एक बांसुरी अपने आप में केवल बांस का एक खोखला टुकड़ा है। परंतु जब वह स्वयं को पूरी तरह खाली कर देती है, तो संगीतकार उस पर अपने होंठ रखकर अत्यंत मधुर तान छेड़ देता है। संगीत बांसुरी का नहीं, संगीतकार का होता है; बांसुरी तो केवल माध्यम बनने का आनंद लेती है। इसी प्रकार जब साधक कहता है—"हे प्रभु! मेरी अपनी कोई व्यक्तिगत इच्छा नहीं है, तेरी इच्छा ही मेरी इच्छा है", तो ईश्वरीय सत्ता उसके माध्यम से अद्भुत और असंभव कार्य संपन्न कराने लगती है।

गृहस्थ जीवन में समभाव की साधना

अध्यात्म का अर्थ संसार, परिवार या गृहस्थ धर्म का त्याग कर जंगलों में भाग जाना नहीं है। वास्तविक साधना तो गृहस्थ जीवन के कोलाहल, दायित्वों और जद्दोजहद के बीच अपने मन के समभाव को बनाए रखना है। घर-परिवार वह प्रयोगशाला (Laboratory) है जहाँ आपके धैर्य, प्रेम, त्याग और साक्षी भाव की वास्तविक परीक्षा होती है।

एक गृहस्थ साधक अपने परिवार से अगाध प्रेम करता है, अपने बच्चों का पालन-पोषण करता है, जीविकोपार्जन के लिए परिश्रम करता है, परंतु भीतर से वह जानता है कि यह सब एक नाटक (Drama) का हिस्सा है जिसमें उसे अपनी भूमिका पूरी निष्ठा से निभानी है। वह जानता है कि न तो परिवार उसका स्थायी है और न ही वह परिवार का। इस अनासक्त प्रेम (Detached Love) के साथ जीवन जीना ही गृहस्थ आश्रम में सहज-योग और समभाव की परम साधना है।

श्रीमद्भगवद्गीता श्लोकः

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।"

– (अध्याय 2, श्लोक 47)

भावार्थः तेरा अधिकार केवल कर्म करने में ही है, उसके फलों में कभी नहीं।

इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत बन और तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।

श्रीमद्भगवद्गीता श्लोकः

"योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।

सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।"

– (अध्याय 2, श्लोक 48)

भावार्थः हे धनंजय! तू आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर

योग में स्थित हुआ कर्तव्य कर्मों को कर, यह समत्व भाव ही 'योग' कहलाता है।

विस्तृत दृष्टांत

1. नर्तक और नृत्य: एक कुशल नर्तक जब मंच पर नृत्य करता है, तो एक ऐसी स्थिति आती है जहाँ नर्तक विलीन हो जाता है और केवल 'नृत्य' शेष रह जाता है। वहाँ कोई अलग से यह सोचने वाला नहीं होता कि "मैं नाच रहा हूँ"। कर्म इतना तन्मय हो जाता है कि कर्ता गिर जाता है। अकर्ता भाव से किया गया कर्म इसी दिव्य नृत्य की भाँति निष्पाप और अति सुंदर होता है।
2. गहरा शांत सरोवर: एक बहुत गहरा सरोवर है। उसकी सतह पर हवा के थपेड़ों से तेज लहरें उठ रही हैं और कंकड़ फेंकने पर हलचल होती है। परंतु यदि आप उस सरोवर की 50 फीट गहराई में उतर जाएँ, तो वहाँ परम मौन और स्थिरता है। बाह्य लहरें (सुख-दुख) सतह पर आती हैं, किंतु अंतर्मन का सरोवर सर्वदा अविचल रहता है।
3. बांसुरी का खालीपन: यदि बांसुरी के भीतर मोम या कंकड़ भरे हों, तो फूँक मारने पर कोई स्वर नहीं निकलेगा, केवल कर्कश ध्वनि आएगी। परंतु जब बांसुरी के भीतर का सारा कूड़ा-करकट (अहंकार) साफ कर दिया जाता है और वह खोखली हो जाती है, तो उसमें से अमरापुरी का संगीत फूट पड़ता है। अकर्ता साधक इसी खोखली बांसुरी के समान है।

साधक-गुरु संवाद

- साधक: स्वामी जी! यदि मैं यह मान लूँ कि "मैं कुछ नहीं करता", तो क्या मैं आलसी और अकर्मण्य नहीं बन जाऊँगा? फिर तो मैं काम-धंधा छोड़कर बैठ जाऊँगा कि सब ईश्वर ही कर रहा है!
- ** गुरु:** अज्ञानवश ऐसा सोचना सहज है। परंतु ध्यान दो: आलस्य या अकर्मण्यता (Tamoguna) भी तो अहम् का ही एक रूप है जहाँ तुम 'न करने के कर्ता' बन जाते हो!
- साधक: तो फिर वास्तविक अकर्ता भाव क्या है?
- गुरु: वास्तविक अकर्ता भाव में आलस्य के लिए कोई स्थान नहीं है। वहाँ ऊर्जा का प्रचंड प्रवाह (Rajoguna) होता है, परंतु उस प्रवाह के पीछे 'मैं-पन' की ऐंठन नहीं होती। तुम प्रकृति की शक्ति के प्रवाह में तैरते हो, न कि आलस्य की कीचड़ में धँसते हो।
- साधक: कर्मफल का त्याग करने का व्यावहारिक अर्थ क्या है?
- गुरु: इसका अर्थ है—काम करते समय अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान दो, परंतु परिणाम आने पर यदि सफलता मिले तो अहंकार से फूले न समाओ, और यदि विफलता मिले तो डिप्रेशन में न जाओ। दोनों को ईश्वरीय विधान मानकर स्वीकार कर लो।

चिंतन-सूत्र

1. "कर्ता भाव ही बंधन है, अकर्ता भाव ही परम मुक्ति है।"
2. "कर्म ऐसे करो जैसे तुम संसार के सबसे बड़े कर्मठ व्यक्ति हो, और परिणाम ऐसे स्वीकार करो जैसे तुम्हारा कोई लेना-देना ही न था।"
3. "सुख और दुख मन की चंचलता हैं; समभाव आत्मा की स्थिरता है।"
4. "स्वयं को खाली करो, परमात्मा तुम्हें अपनी दिव्य उपस्थिति से भर देगा।"
5. "संसार एक रंगमंच है; अपनी भूमिका पूरी निष्ठा से निभाओ, परंतु चरित्र को अपना वास्तविक अस्तित्व मत समझो।"

पारिभाषिक शब्दावली एवं पाद-टिप्पणियाँ

1. नैष्कर्म्य सिद्धि **(Naishkarmya Siddhi):** कर्म करते हुए भी कर्म के बंधनों और कर्ता-भाव से पूरी तरह मुक्त होने की सिद्ध अवस्था।
2. निष्काम कर्मयोग **(Nishkama Karma Yoga):** फल की आसक्ति, कामना और अहंकार से रहित होकर केवल कर्तव्य बोध से किया जाने वाला कर्म।
3. समत्वम् **(Samatvam):** अनुकूल-प्रतिकूल, जय-पराजय और सुख-दुख में मन का एक समान स्थिर रहना; गीता के अनुसार यही वास्तविक योग है।
4. द्वंद्व **(Dualities):** संसार के परस्पर विरोधी जोड़े जैसे—शीत-उष्ण, सुख-दुख, मान-अपमान, लाभ-हानि आदि।
5. अकर्ता **(Non-Doer):** वह स्थिति जहाँ साधक यह अनुभव करता है कि समस्त क्रियाएँ ईश्वर या प्रकृति द्वारा हो रही हैं, वह स्वयं केवल साक्षी है।
6. अनासक्ति **(Detachment):** विषयों और कर्मफलों में मन का न उलझना और अलिप्त रहना।
7. संस्कार **(Subconscious Impressions):** मन के अवचेतन पटल पर कर्मों और विचारों द्वारा छोड़े गए सूक्ष्म प्रभाव या निशान।
8. ईश्वरीय उपकरण **(Divine Instrument):** स्वयं के अहम् को मिटाकर परमात्मा की इच्छा का निष्कपट माध्यम बन जाना।

अध्याय 5: मन का मनोविज्ञान: स्मृति, स्वप्न और शाश्वत वर्तमान

अतीत की राख और भविष्य का छलावा

मानव मन की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि वह कभी भी 'वर्तमान क्षण' में निवास नहीं करता। मन या तो अतीत की स्मृतियों में भटकता रहता है या भविष्य की कल्पित आशंकाओं और योजनाओं में झूलता रहता है। परंतु सत्य यह है कि अतीत अब केवल राख है—एक ऐसा समय जो बीत चुका है और जिसे ब्रह्मांड की कोई भी शक्ति वापस नहीं ला सकती। अतीत के पश्चात्ताप, ग्लानि और दुखों को बार-बार याद करना राख को कुरेदने के समान है जिससे केवल हाथ काले होते हैं।

दूसरी ओर, भविष्य केवल एक छलावा (Illusion) है—एक ऐसा समय जो अभी पैदा ही नहीं हुआ है। हम अपना पूरा जीवन उन घटनाओं की चिंता में नष्ट कर देते हैं जो शायद कभी घटित ही नहीं होंगी। मन भविष्य में सुख के हसीन सपने दिखाता है और वर्तमान के वास्तविक सुख को छीन लेता है। ज्ञानी पुरुष इस बात को भली-भांति समझता है कि समय का केवल एक ही वास्तविक आयाम है, और वह है—"अब और यहाँ" (Here and Now)।

क्षमा का महा-समुद्र — अतीत के घावों का उपचार

अतीत से जुड़े रहने का एक बहुत बड़ा कारण दूसरों द्वारा दिए गए घाव, अपमान और धोखे की स्मृतियाँ हैं। मनुष्य इन घावों को वर्षों तक अपने अंतर्मन में सहलाता रहता है और बदले की भावना या घृणा की आग में जलता रहता है। यह घृणा उस ज़हर के समान है जिसे पीते हम स्वयं हैं और आशा करते हैं कि मरेगा सामने वाला व्यक्ति!

क्षमा (Forgiveness) का महा-समुद्र ही इस मानसिक संताप का एकमात्र उपचार है। क्षमा का अर्थ यह नहीं है कि आपने सामने वाले के गलत आचरण को सही ठहरा दिया; क्षमा का वास्तविक अर्थ यह है कि आपने अपने मन से उस घटना के बोझ को उतारकर फेंक दिया ताकि आपका वर्तमान दूषित न हो। जब आप क्षमा कर देते हैं, तो आप स्वयं को अतीत की जेल से आज़ाद कर लेते हैं। क्षमा हृदय की दुर्बलता नहीं, बल्कि आत्म-बल की पराकाष्ठा है।

संदेह की दीमक से श्रद्धा के खुले आकाश की ओर

मन का एक अत्यंत विघातक स्वभाव है—संदेह (Doubt) करना। मन सदैव नकारात्मकता पर तुरंत विश्वास कर लेता है, किंतु सत्य, सुंदरता और शुद्धता पर संदेह करता है। संदेह की दीमक साधक के विश्वास, शांति और आध्यात्मिक प्रगति को भीतर ही भीतर खोखला कर देती है। संदेहयुक्त मन ('संशयात्मा') न इस लोक में सुख पाता है और न परलोक में।

संदेह की इस संकीर्ण और घुटन भरी सुरंग से बाहर निकलने का मार्ग 'श्रद्धा' (Faith) का खुला आकाश है। श्रद्धा कोई अंधविश्वास या बौद्धिक गुलामी नहीं है; श्रद्धा तो अपने अंतरात्मा, गुरु और परम सत्ता के प्रति वह गहरा बोध और भरोसा है जो तर्क की सीमाओं के पार जाता है। जैसे एक छोटा बालक अपने पिता के हाथ को पकड़कर निर्भय होकर अंधेरी राह पर चलता है, वैसे ही श्रद्धावान साधक ईश्वर के हाथ को पकड़कर जीवन की विषम से विषम परिस्थितियों से हंसते-हंसते पार निकल जाता है।

'अब और यहाँ' (Here and Now) का अमर लोक

वर्तमान क्षण (The Present Moment) ही वह एकमात्र द्वार है जिससे होकर मनुष्य ईश्वर और अनंत शांति में प्रवेश कर सकता है। काल (Time) मन का निर्माण है; जहाँ मन है वहाँ समय है, और जहाँ समय है वहाँ मन है। जब आप अपने ध्यान को पूरी तरह से 'इसी क्षण' पर समेट लेते हैं, तो मन का अस्तित्व ही विलीन हो जाता है।

इस 'अब और यहाँ' के अमर लोक में कोई चिंता नहीं है, कोई भय नहीं है, कोई कमी नहीं है। इस क्षण में आप पूरी तरह से परिपूर्ण (Complete) हैं। जब आप श्वास लेते हैं, तो केवल श्वास के प्रति सजग रहें; जब भोजन करते हैं, तो भोजन के स्वाद और सुगंध में लीन रहें। वर्तमान में जाग जाना ही काल-जयी होना है। जो वर्तमान क्षण में जीना सीख गया, उसने जीवन का परम रहस्य पा लिया।

मन की ग्रंथियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

मानव मन संस्कारों, ग्रंथियों (Complexes) और दमित वासनाओं की एक अत्यंत जटिल संरचना है। हमारे अवचेतन मन (Unconscious Mind) में बाल्यकाल से लेकर अब तक की अनगिनत दमित इच्छाएँ, भय, और ईर्ष्याएँ छिपकर बैठी रहती हैं। जब भी बाह्य जीवन में कोई अनुकूल परिस्थिति मिलती है, ये ग्रंथियाँ उफनकर बाहर आती हैं और हमारे व्यवहार को नियंत्रित करने लगती हैं।

साक्षी ध्यान इन मानसिक ग्रंथियों का शल्य-चिकित्सक (Surgeon) है। जब आप शांत बैठकर अपने अंतर्मन की हलचलों का निरीक्षण करते हैं, तो ये छिपकर बैठी हुई ग्रंथियाँ सतह पर आती हैं। इन्हें दबाने (Suppress) या इनसे भागने के बजाय केवल होश की धूप दिखाएँ। जैसे सूर्य के प्रकाश में जीवाणु नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही साक्षी चेतना के प्रकाश में मन की प्राचीनतम ग्रंथियाँ और दमित वासनाएँ पिघलकर विलीन हो जाती हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता श्लोक:

"अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।

नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।।"

– (अध्याय 4, श्लोक 40)

भावार्थ: विवेकहीन, श्रद्धारहित और संशययुक्त मनुष्य परमार्थ से भ्रष्ट हो जाता है।

ऐसे संशययुक्त मनुष्य के लिए न यह लोक है, न परलोक है और न ही कोई सुख है।

संत कबीर की साखी:

"काल करै सो आज कर, आज करै सो अब।

पल में परलै होयगी, बहुरी करैगो कब।।"

विस्तृत दृष्टांत

1. चलचित्र का पर्दा: सिनेमाघर में जो चित्र पर्दे पर आते हैं, वे अतीत में शूट किए जा चुके हैं। यदि आप पर्दे पर दिख रहे आग के दृश्य पर पानी फेंकेंगे, तो पर्दा खराब होगा, आग नहीं बुझेगी। इसी प्रकार अतीत की स्मृतियों पर मानसिक ऊर्जा नष्ट करना पूरी तरह व्यर्थ है। वर्तमान क्षण ही वह स्थान है जहाँ आप नया चित्र बना सकते हैं।
2. ज़हर का प्याला: किसी व्यक्ति ने आपको 10 वर्ष पूर्व अपमानित किया था। उसने तो एक बार अपमान किया, किंतु आप पिछले 10 वर्षों से उस घटना को रोज़ याद करके स्वयं को दुखी कर रहे हैं। यह वैसा ही है जैसे किसी और के अपराध की सजा आप स्वयं को रोज़ ज़हर का प्याला पीकर दे रहे हों। क्षमा करना उस ज़हर के प्याले को सदा के लिए फेंक देना है।
3. बालू की मुट्ठी: जब आप गीली बालू (रेत) को अपनी मुट्ठी में कसकर भींचते हैं, तो बालू उँगलियों के बीच से तेजी से फिसल जाती है। जितना कसकर भींचेंगे, बालू उतनी ही तेजी से बाहर

निकलेगी। भविष्य को वश में करने की हमारी कोशिश भी ऐसी ही है। जीवन को मुट्ठी में भींचने के बजाय हथेली खोलकर वर्तमान का आस्वादन करना ही बुद्धिमान होना है।

साधक-गुरु संवाद

- साधक: स्वामी जी! वर्तमान में रहने का विचार तो बहुत सुंदर है, परंतु व्यावहारिक जीवन में हमें भविष्य की योजनाएँ (Planning) तो बनानी ही पड़ती हैं। क्या भविष्य की योजना बनाना गलत है?
- ** गुरु:** वत्स! योजना बनाना और 'भविष्य की चिंता में पिसना'—इन दोनों में बहुत अंतर है। योजना बनाना वर्तमान क्षण का एक कार्य (Action) है। तुम शांत मन से बैठकर वर्तमान में भविष्य की रूपरेखा तय करो, और फिर उस फाइल को बंद करके रख दो।
- साधक: परंतु चिंता कैसे बंद हो?
- गुरु: चिंता तब पैदा होती है जब तुम योजना के परिणाम के साथ चिपक जाते हो। कर्म वर्तमान में करो, योजना वर्तमान में बनाओ, परंतु परिणाम को काल के प्रवाह पर छोड़ दो।
- साधक: मन बार-बार अतीत की पुरानी बातों में क्यों भागता है?
- गुरु: क्योंकि मन को वर्तमान में रहने से डर लगता है! वर्तमान में मन की मृत्यु होती है, और अतीत-भविष्य में मन का पोषण होता है। जब भी मन भागने लगे, अपनी श्वास पर लौट आओ। श्वास सदैव 'अभी' और 'यहाँ' चल रही होती है।

चिंतन-सूत्र

1. "अतीत एक बीता हुआ स्वप्न है, भविष्य एक अनदेखा छलावा; केवल वर्तमान ही सत्य है।"
2. "क्षमा दूसरों पर दया नहीं, बल्कि अपने ही मन को ज़हर से मुक्त करने की कला है।"
3. "संदेह तुम्हें सीमाओं में बाँधता है; श्रद्धा तुम्हें अनंत गगन की उड़ान देती है।"
4. "श्वास पर ध्यान ही वर्तमान क्षण में प्रवेश करने की सबसे सीधी चाबी है।"
5. "मन की ग्रंथियों से संघर्ष मत करो; केवल साक्षी के प्रकाश से उन्हें आलोकित कर दो।"

पारिभाषिक शब्दावली एवं पाद-टिप्पणियाँ

1. शाश्वत वर्तमान **(Eternal Now):** समय का वह निरपेक्ष क्षण जो काल की सीमाओं से परे है और जहाँ नित्य चेतना का निवास है।
2. संशयात्मा **(Doubting Mind):** वह चित्त जो निरंतर संदेह, अविश्वास और अनिश्चय की अग्नि में जलता रहता है।

3. दमित वासनाएँ **(Suppressed Desires):** वे इच्छाएँ जिन्हें समाज या भय के कारण मन के अवचेतन पटल में जबरन दबा दिया गया हो।
4. श्रद्धा **(Faith):** अपने आत्म-स्वरूप, गुरु वाक्य और वेदांत के सिद्धांतों के प्रति संशय-रहित गहरा आभ्यंतरिक विश्वास।
5. ग्रंथि **(Psychological Complex):** मन के अवचेतन में जमी हुई अतीत की आघातपूर्ण स्मृतियाँ और उलझनें।
6. नेति-स्मृति **(Dissolution of Memory):** अतीत की अनावश्यक और कष्टदायक स्मृतियों के प्रभाव को साक्षी भाव से क्षीण कर देना।
7. अवचेतन मन **(Unconscious Mind):** मन का वह गहरा हिस्सा जहाँ जीवन की समस्त दमित संवेदनाएँ और जन्म जन्मांतर के संस्कार जमा रहते हैं।
8. काल-जयी **(Conqueror of Time):** वह साधक जो समय के प्रवाह से ऊपर उठकर नित्य और अमर आत्म-स्वरूप में स्थित हो गया हो।

अध्याय 6: भीड़ में एकांत और अजनबीपन का सौंदर्य

अकेलापन (Loneliness) बनाम एकांत (Solitude) का आंतरिक साम्राज्य

साधारण मनुष्य 'अकेलेपन' (Loneliness) से बहुत डरता है। अकेलापन एक नकारात्मक मानसिक अवस्था है जहाँ व्यक्ति दूसरों की अनुपस्थिति से दुखी होता है, स्वयं को अधूरा, उपेक्षित और असहाय महसूस करता है। इस अकेलेपन से भागने के लिए वह भीड़ ढूँढता है, मित्रों की संगति खोजता है, टेलीविजन या मोबाइल में मन बहलाता है, या व्यसनों का सहारा लेता है। परंतु भीड़ में जाकर भी उसका अकेलापन दूर नहीं होता, वह केवल दब जाता है।

इसके विपरीत, 'एकांत' (Solitude) एक अत्यंत सकारात्मक, समृद्ध और दिव्य अवस्था है। एकांत का अर्थ है—स्वयं की उपस्थिति का आनंद लेना (Enjoying one's own presence)। एकांत में साधक दूसरों की कमी महसूस नहीं करता, बल्कि वह अपने ही भीतर छिपे हुए परमात्मा के संग का आनंद लेता है। अकेलापन दरिद्रता है, एकांत साम्राज्य है। अकेलापन आपको बाहर भटकाता है, एकांत आपको अपने आंतरिक साम्राज्य का सम्राट बना देता है।

इस संसार में मेहमान की भाँति रहना

ज्ञानी पुरुष संसार में रहता है, परंतु वह संसार का होकर नहीं रहता। वह इस पृथ्वी पर स्वयं को एक 'अजनबी' या 'मेहमान' (Guest) समझता है। जब आप किसी के घर में अतिथि बनकर जाते हैं, तो आप उस घर की वस्तुओं का आनंद तो लेते हैं, परंतु आप उन पर अपना अधिकार नहीं जमाते। आपको पता होता है कि यह घर किसी और का है और आपको शीघ्र ही यहाँ से विदा होना है।

यही 'अजनबीपन का सौंदर्य' है। जब साधक संसार में मेहमान की भाँति रहने लगता है, तो उसके सारे मोह-बंधन और अहम् की अकड़ समाप्त हो जाती है। वह किसी भी वस्तु या व्यक्ति के खो जाने पर रोता नहीं है। वह संसार के इस विशाल रंगमंच का आनंद एक दर्शक और अतिथि की भाँति लेता है। इस भाव से जीवन में एक अद्भुत स्वतंत्रता, हलकापन और अहोभाव आ जाता है।

मोह और करुणा का सूक्ष्म भेद

अज्ञानी मनुष्य अक्सर 'मोह' (Attachment) को ही 'प्रेम' समझ लेने की भूल करता है। मोह अंधा, संकीर्ण, स्वार्थी और अधिकार जमाने वाला होता है। मोह में भय होता है कि कहीं सामने वाला व्यक्ति मुझे छोड़ न दे। मोह व्यक्ति को बाह्य आलंबन पर निर्भर बनाता है और अंततः भयंकर दुख और बंधन का कारण बनता है।

इसके विपरीत, 'करुणा' (Compassion) और सच्चा प्रेम अत्यंत व्यापक, निस्वार्थ और मुक्त करने वाला होता है। करुणा में कोई माँग नहीं होती, कोई शर्त नहीं होती, और न ही कोई अधिकार जमाने की चेष्टा होती है। करुणा सूर्य के प्रकाश की भाँति है जो बिना किसी भेदभाव के सब पर समान रूप से बरसती है। ज्ञानी पुरुष के भीतर मोह का लेशमात्र भी नहीं होता, किंतु उसका हृदय समस्त प्राणिमात्र के लिए अगाध करुणा से भरा होता है।

बच्चों जैसी निर्मल और विस्मय भरी आँखें

जैसे-जैसे मनुष्य बड़ा होता है, उसकी आँखें सांसारिक ज्ञान, अनुभवों, धारणाओं और पूर्वाग्रहों की धूल से भर जाती हैं। वह जीवन के सहज चमत्कार को देखना बंद कर देता है। उसके लिए एक खिलता हुआ पुष्प, उड़ती हुई तितली या ढलता हुआ सूर्य केवल एक साधारण घटना बन जाते हैं। उसका विस्मय (Wonder) खो जाता है, और विस्मय के खोते ही जीवन शुष्क और नीरस हो जाता है।

अध्यात्म साधक की आँखों की उस निर्मलता को लौटाता है जो एक छोटे बालक की आँखों में होती है। ईसा मसीह ने कहा था—"जब तक तुम छोटे बच्चों की भाँति न बन जाओ, तब तक तुम ईश्वर के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकते।" बच्चों जैसी आँखों का अर्थ है—बिना किसी पूर्वाग्रह के, ताजगी और विस्मय के साथ जीवन के प्रति पल को देखना। जब आपकी दृष्टि निर्मल होती है, तो संसार का कण-कण ईश्वर के सौंदर्य का पता देने लगता है।

संबंधों में स्वतंत्रता और प्रेम का संतुलन

संसार के अधिकांश संबंध (Relationships) दुखदायी इसलिए हो जाते हैं क्योंकि उनमें एक-दूसरे को बाँधने, वश में करने और बदलने की कोशिश होती है। पति पत्नी को बदलना चाहता है, माता-पिता बच्चों पर अपनी इच्छाएँ थोपना चाहते हैं। जहाँ स्वतंत्रता नहीं है, वहाँ प्रेम कभी पनप ही नहीं सकता; वहाँ केवल एक सूक्ष्म युद्ध चलता रहता है।

एक सहज जोगी अपने संबंधों में प्रेम और स्वतंत्रता का अनुपम संतुलन साधना जानता है। वह सामने वाले व्यक्ति को वैसा ही स्वीकार करता है जैसा वह है, और उसे अपने ढंग से खिलने की पूर्ण स्वतंत्रता देता है। संत कबीर की भाषा में कहें तो—"खिंचे को खिंचे रहे, ढीले को ढील।" संबंधों में एक-दूसरे के व्यक्तित्व का सम्मान करते हुए भी भीतर से असंग रहना ही संबंधों की परम मिठास और आध्यात्मिक सुरक्षा है।

गोरखनाथ की सबदी:

"बस्ती न शून्यं शून्यं न बस्ती अगम अगोचर ऐसा।

गगन सिखर महि सबद अनहद बाजै बाजा।।"

संत कबीर की साखीः

"कबीरा खड़ा बाजार में, मांगे सबकी खैर।

ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर।।"

विस्तृत दृष्टांत

1. समुद्र की सतह और गहराई: समुद्र की सतह पर भीषण तूफान आता है, बड़ी-बड़ी लहरें टकराती हैं और कोलाहल होता है। यह संसार की भीड़ और संबंधों की हलचल है। परंतु समुद्र के पेंदे (गहराई) में परम शांति और एकांत है। जोगी बाहर से भीड़ में रहता है, परंतु उसका मन सदैव समुद्र की उस शांत गहराई (एकांत) में विश्राम करता है।
2. सराय का मेहमान: एक सराय में देश-विदेश से अनेक यात्री आकर ठहरते हैं। वे शाम को एक साथ बैठकर हँसते-गाते हैं, बातें करते हैं, भोजन करते हैं। परंतु प्रातः होते ही सब अपने-अपने मार्ग पर चले जाते हैं। कोई किसी के जाने पर रोता नहीं क्योंकि वे जानते थे कि हमारा साथ केवल एक रात का था। ज्ञानी पुरुष इस संसार के संबंधों को ऐसी ही सराय मानता है।
3. सूर्य का प्रकाश: सूर्य आकाश में अकेला चमकता है। वह किसी से संगति की याचना नहीं करता। परंतु उसका प्रकाश संपूर्ण पृथ्वी को जीवन, उष्णता और सौंदर्य प्रदान करता है। सूर्य का यह अकेलापन दरिद्रता नहीं, बल्कि उसकी परम सामर्थ्य का प्रतीक है। साधक का एकांत भी इसी सूर्य की भाँति स्व-प्रकाशित होता है।

साधक-गुरु संवाद

- साधक: हे गुरुदेव! जब मैं अकेला बैठता हूँ, तो मुझे बहुत घबराहट और उदासी महसूस होती है। मन करता है कि तुरंत किसी से बात करूँ या बाहर चला जाऊँ। ऐसा क्यों होता है?
- गुरु: वत्स! क्योंकि अकेले में तुम्हारा सामना अपने ही भीतर के कूड़े-करकट, खालीपन और अशांत विचारों से होता है। तुम स्वयं से ही भाग रहे हो!
- साधक: तो मैं इस अकेलेपन से कैसे बचूँ?
- गुरु: भागो मत! जब अकेलापन महसूस हो, तो शांत बैठकर उस अकेलेपन को ही देखो। उसे भगोड़े की तरह मत देखो, उसका स्वागत करो। धीरे-धीरे तुम पाएँगे कि अकेलेपन की वह घबराहट पिघल रही है और उसके पीछे से एकांत का परम आनंद प्रकट हो रहा है।
- साधक: क्या भीड़ में रहते हुए भी एकांत पाया जा सकता है?

- गुरु: बिल्कुल! एकांत स्थान की दूरी नहीं, बल्कि मन की एक दशा है। यदि तुम्हारा मन भीतर से निष्काम और शांत है, तो तुम बाजार के बीच खड़े होकर भी परम एकांत का अनुभव कर सकते हो।

चिंतन-सूत्र

1. "अकेलापन दूसरों की कमी है, एकांत स्वयं की परिपूर्णता है।"
2. "इस संसार में ऐसे रहो जैसे तुम केवल कुछ दिनों के लिए आए हुए एक अजनबी मेहमान हो।"
3. "मोह तुम्हें गुलाम बनाता है, करुणा तुम्हें और दूसरों को मुक्त करती है।"
4. "जीवन को जानने के लिए बच्चे की तरह निष्पाप और विस्मय भरी आँखें चाहिए।"
5. "सच्चा प्रेम स्वतंत्रता देता है, अधिकार नहीं जमाता।"

पारिभाषिक शब्दावली एवं पाद-टिप्पणियाँ

1. एकांत **(Solitude):** बाह्य आलंबनों से मुक्त होकर स्वयं के शुद्ध चेतना-स्वरूप में आनंदित रहने की आंतरिक स्थिति।
2. करुणा **(Compassion):** प्राणिमात्र के दुख को देखकर हृदय का पिघलना और बिना किसी स्वार्थ के उनके कल्याण की भावना।
3. अनिकेत **(Unattached Traveler):** वह साधक जिसका कोई निश्चित बाह्य घर या संकीर्ण पहचान न हो; जो संपूर्ण ब्रह्मांड को ही अपना घर मानता हो।
4. विस्मय **(Sense of Wonder):** जीवन और अस्तित्व के रहस्यों के प्रति एक छोटे बालक की भाँति निष्कपट आश्चर्य का भाव।
5. अनासक्त प्रेम **(Unattached Love):** वह प्रेम जो मोह, अधिकार और अपेक्षाओं से पूरी तरह मुक्त हो।
6. स्वाधीनता **(Self-Sovereignty):** बाह्य परिस्थितियों या व्यक्तियों पर निर्भर न होकर अपनी अंतरात्मा में स्वतंत्र रहना।
7. सत्संग **(Satsang):** सत्य की संगति; चाहे वह गुरु का सान्निध्य हो, शास्त्रों का अध्ययन हो या स्वयं के साक्षी भाव में स्थिति हो।
8. अज्ञान-मोहित **(Deluded by Attachment):** वह स्थिति जहाँ जीव संकीर्ण मोह के कारण सत्य को देखने में असमर्थ हो जाता है।

अध्याय 7: भक्ति की पराकाष्ठा और कृतज्ञता का नृत्य

माँगों से मुक्त प्रार्थना व अहोभाव (Gratitude)

संसार में अधिकांश लोग प्रार्थना (Prayer) के नाम पर केवल सौदेबाजी करते हैं। वे मंदिरों और पूजालयों में माँगों की एक लंबी सूची लेकर जाते हैं—"हे ईश्वर! मुझे धन दे दो, स्वास्थ्य दे दो, परीक्षा में पास करा दो, शत्रु का नाश कर दो।" ऐसी प्रार्थना प्रार्थना नहीं, बल्कि अहम् की वासनाओं का विज्ञापन है। इसमें प्रेम नहीं, केवल स्वार्थ और भय छिपा होता है।

भक्ति की पराकाष्ठा तब होती है जब प्रार्थना से समस्त माँगें विलीन हो जाती हैं और केवल 'अहोभाव' (Gratitude) शेष रह जाता है। साधक हाथ जोड़कर केवल इतना कहता है—"हे प्रभु! आपने मुझे जो यह जीवन, यह श्वास, यह प्रकृति और अपना बोध दिया है, उसके लिए मेरे पास धन्यवाद देने के लिए शब्द नहीं हैं। आपने मुझे मेरी पात्रता से बहुत अधिक दिया है।" माँगों से मुक्त यही अहोभाव वास्तविक प्रार्थना है जो परमात्मा के द्वार खोल देती है।

भक्त और भगवान का अद्वैत मिलन

ज्ञानमार्ग जहाँ 'मैं कौन हूँ?' की खोज करते हुए अंत में 'अहं ब्रह्मास्मि' तक पहुँचता है, वहीं भक्तिमार्ग 'तू ही तू है' (तौहीद / समर्पण) का नाद करते हुए अपने अहम् को पूरी तरह मिटा देता है। जब 'मैं' मिट जाता है, तो जो शेष बचता है वह केवल 'तू' (परमात्मा) ही है। अंततः ज्ञान और भक्ति दोनों एक ही बिंदु पर आकर मिल जाते हैं।

भक्ति की उच्चतम अवस्था में भक्त और भगवान के बीच का द्वैत (Dualism) समाप्त हो जाता है। जब तक भक्त अलग है और भगवान अलग हैं, तब तक भक्ति अधूरी है। जब मीराबाई गाती हैं या चैतन्य महाप्रभु नृत्य करते हैं, तो वहाँ नर्तक और परमात्मा का भेद मिट जाता है। भक्त स्वयं भगवान का रूप बन जाता है और संपूर्ण संसार में उसे अपने प्रियतम प्रभु का ही दर्शन होने लगता है। 'हरि व्यापक सर्वत्र समाना, प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना।'

ज्ञान के अहंकार (विद्या-मद) का त्याग और विसर्जन का उल्लास

अध्यात्म के मार्ग पर 'विद्या-मद' अर्थात् ज्ञान का अहंकार एक बहुत बड़ा और सूक्ष्म रोड़ा है। व्यक्ति जब वेद, उपनिषद, और दर्शनशास्त्र पढ़ लेता है, तो उसके भीतर यह सूक्ष्म घमंड आ जाता है कि "मैं बहुत विद्वान हूँ, मैं अद्वैत को जानता हूँ।" यह ज्ञान का अहंकार लोहे की बेड़ियों से भी अधिक कठोर सोने की बेड़ी बन जाता है जो साधक को मुक्त नहीं होने देता।

भक्ति का मार्ग इस ज्ञान के अहंकार को तत्क्षण भस्म कर देता है। भक्त अपने संपूर्ण पांडित्य, बुद्धि और ज्ञान को प्रभु के चरणों में समर्पित करके एक निश्छल बालक बन जाता है। वह जानता है कि बुद्धि से परमात्मा को समझा जा सकता है, किंतु पाया केवल हृदय के पिघलने और विसर्जन (Dissolution) से ही जा सकता है। स्वयं को मिटा देने में जो आनंद और उल्लास है, वह ब्रह्मांड की किसी भी उपलब्धि में नहीं है।

प्रेम-लक्षणा भक्ति और हृदय का पिघलना

शुष्क बौद्धिक विचार मनुष्य के हृदय को पत्थर की भाँति कठोर बना सकते हैं। परंतु भक्ति की रसधार जब बहती है, तो वह पाषाण हृदय को भी मोम की तरह पिघला देती है। 'प्रेम-लक्षणा भक्ति' वह अवस्था है जहाँ साधक के नेत्रों से प्रभु के विरह और प्रेम के अश्रु (आनंदाश्रु) निरंतर प्रवाहित होते हैं। उसका रोम-रोम रोमांचित हो उठता है।

प्रेम-लक्षणा भक्ति में कोई शुष्क नियम, कर्मकांड या मर्यादा आड़े नहीं आती। यहाँ तो केवल प्रेम की अनन्यता है। जैसे गोपिओं का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम था—जहाँ वे अपने सुध-बुध, लोक-लाज और देह-भाव को पूरी तरह भूल गई थीं। जब हृदय में प्रेम का यह परम स्त्रोत फूटता है, तो समस्त मानसिक विकार, काम-क्रोध और वासनाएँ उसी रसधार में बहकर बहिरंग हो जाती हैं।

जीवन को एक उत्सव और नृत्य बनाना

साधारण मनुष्य जीवन को एक संताप, एक संघर्ष या एक भारी बोझ समझकर जीता है। वह हँसना भूल गया है, वह नाचना भूल गया है। परंतु जिस साधक के भीतर भक्ति और कृतज्ञता का जागरण हो चुका है, उसके लिए जीवन का प्रति पल एक महा-उत्सव (Celebration) बन जाता है।

वह हवा की सरसराहट में प्रभु का संदेश सुनता है, पक्षियों के कलरव में अनहद नाद सुनता है, और वर्षा की बूँदों में ईश्वरीय करुणा का अनुभव करता है। उसका उठना-बैठना, खाना-पीना और सांस लेना ही एक दिव्य नृत्य बन जाता है। वह किसी भावी स्वर्ग की प्रतीक्षा नहीं करता, वह इसी धरती पर, इसी क्षण में अपने जीवन को बैकुंठ बना लेता है। भक्ति जीवन को उदासी से निकालकर परम उल्लास के महा-समुद्र में डुबो देती है।

संत मीराबाई का पदः

"पग घुँघरू बाँध मीरा नाची रे।

मैं तो मेरे नारायण की आपहि हो गई दासी रे।।

लोग कहै मीरा भई बावरी, न्यात कहै कुलनासी रे।

विष का प्याला राणाजी भेज्या, पीवत मीरा हाँसी रे।।"

नारद भक्ति सूत्रः

"सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा। अमृतस्वरूपा च।

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, मृतो भवति, तृप्तो भवति।।"

– (सूत्र 2-4)

भावार्थः वह भक्ति परम प्रेम रूपा है और अमृत स्वरूपा है।

जिसे प्राप्त करके मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है और नित्य तृप्त हो जाता है।

विस्तृत दृष्टांत

1. नदी और सागर का मिलन: एक नदी उत्तुंग पहाड़ों से निकलकर, जंगलों और मैदानों को पार करती हुई बहती है। उसके भीतर सागर से मिलने की तीव्र तड़प (विरह) होती है। अंत में जब नदी सागर के मुहाने पर पहुँचती है, तो वह सागर में छलाँग लगा देती है। सागर में गिरते ही नदी का अपना पृथक नाम और रूप विलीन हो जाता है; वह स्वयं सागर बन जाती है। भक्त का परमात्मा में विसर्जन ऐसा ही होता है।
2. नमक की पुतली का समुद्र नापना: एक बार नमक की एक छोटी सी पुतली समुद्र की गहराई नापने गई। वह जैसे ही समुद्र के जल में उतरी, जल का स्पर्श होते ही वह नमक की पुतली जल में पिघलने लगी। पेंदे तक पहुँचते-पहुँचते वह पूरी तरह घुल गई। अब कौन लौटकर बताए कि समुद्र कितना गहरा है? भक्ति में ज्ञान का विसर्जन ऐसा ही संपूर्ण होता है।

3. बांसुरी का खालीपन और संगीत: जब भक्त स्वयं को पूरी तरह मिटाकर खाली कर देता है, तो भगवान उस पर अपने होंठ रखकर अपने अनहद नाद का संगीत बजाने लगते हैं। भक्त फिर अपना गाना नहीं गाता, वह तो केवल प्रभु के गीत की गूँज बन जाता है।

साधक-गुरु संवाद

- साधक: गुरुदेव! ज्ञानी कहते हैं कि "मैं ब्रह्म हूँ" (अहं ब्रह्मास्मि) और भक्त कहते हैं कि "मैं प्रभु का दास हूँ" (दासोऽहम्)। इन दोनों में से कौन सा मार्ग श्रेष्ठ है?
- गुरु: प्रिय वत्स! इन दोनों में कोई विरोध नहीं है, यह केवल देखने का दृष्टिकोण है। ज्ञानी अहम् की अशुद्धि को हटाकर स्वयं को आत्मा अनुभव करता है, और भक्त अहम् को परमात्मा के चरणों में समर्पित करके मिटा देता है।
- साधक: परंतु मिटने में तो बड़ा डर लगता है!
- गुरु: डर केवल अहम् को लगता है, क्योंकि अहम् एक झूठी सत्ता है। जब तुम मिट्टी का दीया बुझाते हो, तो सूर्य का प्रकाश प्रकट होता है। अपने इस छोटे 'मैं' को मिटा दो, तुम पाओगे कि तुम स्वयं संपूर्ण ब्रह्मांड बन गए हो!
- साधक: प्रार्थना में क्या माँगना चाहिए?
- गुरु: कुछ भी मत माँगो! केवल प्रभु की उपस्थिति का धन्यवाद करो। कहो—"हे प्रभु! तेरी कृपा ही मेरी सबसे बड़ी संपत्ति है, मेरी अपनी इच्छा शून्य हो जाए और तेरी इच्छा पूरी हो।"

चिंतन-सूत्र

1. "माँगने वाली प्रार्थना स्वार्थ है; केवल धन्यवाद देने वाली प्रार्थना परम भक्ति है।"
2. "जब 'मैं' मिटता है, तभी 'तू' प्रकट होता है।"
3. "ज्ञान का अहंकार लोहे से भी कठोर सोने की बेड़ी है; नम्रता ही उसकी मुक्ति है।"
4. "हृदय का पिघलना ही भक्ति का वास्तविक प्रारंभ है।"
5. "जिसका जीवन कृतज्ञता से भरा है, उसके लिए यह धरती ही स्वर्ग है।"

पारिभाषिक शब्दावली एवं पाद-टिप्पणियाँ

1. अहोभाव **(Gratitude):** अस्तित्व और परमात्मा के प्रति हृदय की अगाध कृतज्ञता और धन्यवाद का भाव।
2. प्रेम-लक्षणा भक्ति **(Devotion of Divine Love):** नारद भक्ति सूत्र के अनुसार भक्ति की वह सर्वोच्च अवस्था जहाँ केवल निष्काम और अनन्य प्रेम ही प्रधान होता है।

3. विद्या-मद **(Pride of Scholarship):** शास्त्रों और दर्शन के शुष्क ज्ञान से उत्पन्न होने वाला सूक्ष्म अहंकार।
4. अद्वैत मिलन **(Non-Dual Union):** भक्त और भगवान के बीच पृथकता का भ्रम मिटकर एक हो जाने की स्थिति।
5. दासोऽहम् **(I am the Servant):** भक्त का वह भाव जहाँ वह स्वयं को ईश्वर का केवल एक निष्कपट सेवक मानता है।
6. आनंदाश्रु **(Tears of Joy):** ईश्वर के विरह या परम प्रेम के अतिरेक में नेत्रों से बहने वाले पवित्र अश्रु।
7. अनन्या भक्ति **(Exclusive Devotion):** परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी भी बाह्य आलंबन का आश्रय न लेना।
8. विसर्जन **(Dissolution):** अपने पृथक अस्तित्व और अहंकार को परम सत्ता में पूरी तरह विलीन कर देना।

अध्याय 8: अष्टावक्र गीता और भारतीय ऋषि-परंपरा का निचोड़

राजा जनक और महर्षि अष्टावक्र का महा-संवाद (सद्यः मुक्ति का विज्ञान)

भारतीय अध्यात्म के इतिहास में 'अष्टावक्र गीता' एक अद्वितीय, अत्यंत निर्भीक और क्रान्तिकारी ग्रंथ है। यह कोई साधारण धार्मिक शास्त्र नहीं है, बल्कि यह 'सद्यः मुक्ति' (Instant Enlightenment) का परम विज्ञान है। राजा जनक, जो एक महान सम्राट थे, जब महर्षि अष्टावक्र के चरणों में बैठकर प्रश्न करते हैं—"हे भगवन्! ज्ञान की प्राप्ति कैसे हो? मुक्ति कैसे मिले? और वैराग्य कैसे सिद्ध हो?", तो अष्टावक्र किसी लंबी साधना, जप, तप या योग-अभ्यास का उपदेश नहीं देते।

अष्टावक्र सीधे सत्य का प्रहार करते हुए कहते हैं—"यदि तुम मुक्ति चाहते हो, तो विषयों को विष की तरह छोड़ दो; और क्षमा, सरलता, दया, संतोष तथा सत्य को अमृत की तरह सेवन करो। तुम न पृथ्वी हो, न जल, न अग्नि, न वायु, न आकाश। तुम तो इन पाँचों तत्त्वों को जानने वाले साक्षी चेतना हो! अभी, इसी क्षण स्वयं को देह से पृथक करके अपनी चेतना में विश्राम करो, तुम तत्क्षण मुक्त और शांत हो जाओगे।" अष्टावक्र का यह उपदेश क्रमिक विकास (Evolution) का नहीं, बल्कि सीधे छलाँग (Quantum Leap) का मार्ग है।

वेदों की ऋचाएँ और चारों महावाक्यों का मर्म

भारतीय ऋषि-परंपरा का संपूर्ण निचोड़ वेदों के चार अमर महावाक्यों में निहित है। ये महावाक्य केवल वाक्य नहीं हैं, बल्कि ये आत्म-साक्षात्कार के चार दिव्य अनुभव हैं:

1. प्रज्ञानं ब्रह्म (ऋग्वेद): "विशुद्ध चेतना ही ब्रह्म है।" अर्थात संसार में जो भी ज्ञान और होश का स्पंदन है, वही परम सत्य है।
2. अहं ब्रह्मास्मि (यजुर्वेद): "मैं ही ब्रह्म हूँ।" यह साधक का वह आत्म-साक्षात्कार है जहाँ उसका जीव-भाव समाप्त होकर ब्रह्म-भाव जागृत होता है।
3. तत्त्वमसि (सामवेद): "वह (परमात्मा) तुम ही हो।" गुरु अपने शिष्य को बोध कराते हैं कि जिस सत्य को तुम बाहर ढूँढ रहे हो, वह तुमसे अलग नहीं, वह तुम ही हो।
4. अयमात्मा ब्रह्म (अथर्ववेद): "यह आत्मा ही ब्रह्म है।" यह अंतरात्मा और परमात्मा की पूर्ण अभिन्नता का अंतिम उद्घोष है।

इन महावाक्यों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि भारतीय दर्शन का लक्ष्य मनुष्य को कोई असहाय प्राणी बनाना नहीं, बल्कि उसे उसकी वास्तविक ईश्वरीय महिमा में प्रतिष्ठित करना है।

मुण्डकोपनिषद के दो पक्षी — भोक्ता और साक्षी

मुण्डकोपनिषद में भारतीय ऋषियों ने जीवात्मा और परमात्मा के संबंध को समझाने के लिए एक अत्यंत सुंदर और काव्यात्मक रूपक (Metaphor) दिया है। एक ही वृक्ष (शरीर) पर दो सुंदर पंख वाले पक्षी निवास करते हैं जो आपस में सदा के सखा हैं।

इनमें से पहला पक्षी (जीव) वृक्ष के खट्टे-मीठे फलों को चखता रहता है। जब वह मीठा फल खाता है तो प्रसन्न होता है, और जब खट्टा या कड़वा फल खाता है तो दुखी और संतप्त होता है। वह सुख-दुख के चक्कर में पिसता रहता है। परंतु दूसरा पक्षी (साक्षी/परमात्मा) उस वृक्ष की सबसे ऊँची डाल पर बैठा रहता है। वह कोई फल नहीं खाता, वह तो केवल शांत, अचल और आनंदित होकर नीचे वाले पक्षी के नाटक को देखता रहता है। जब नीचे वाला पक्षी थककर ऊपर वाले पक्षी की ओर देखता है और उसकी शांति को पहचान लेता है, तो उसका समस्त शोक और संताप तत्क्षण विलीन हो जाता है।

पुराणों के आख्यानों का गूढ़ आध्यात्मिक अर्थ (समुद्र मंथन आदि)

भारतीय पौराणिक कथाएँ केवल मनोरंजन या ऐतिहासिक गाथाएँ नहीं हैं, बल्कि वे अंतर्जगत के अत्यंत गूढ़ मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक रहस्यों के प्रतीकात्मक आख्यान हैं। उदाहरण के लिए, 'समुद्र मंथन' की कथा हमारे अपने ही चित्त के मथन का प्रतीक है:

- समुद्र: हमारा मन या चित्त।
- मंदराचल पर्वत: हमारी रीढ़ की हड्डी या एकाग्रता का केंद्र।
- वासुकी नाग: हमारी श्वास और कुंडलिनी शक्ति।
- देव और दानव: हमारे भीतर के शुभ (सकारात्मक) और अशुभ (नकारात्मक) विचार।
- विष (हलाहल): साधना के प्रारंभिक चरण में बाहर आने वाली मन की दमित वासनाएँ और विकार। इस विष को केवल शिव (साक्षी चेतना) ही अपने कंठ में धारण कर सकते हैं।
- 14 रत्न: साधना के परिपक्व होने पर प्राप्त होने वाली आत्मिक सिद्धियाँ और आनंद।
- अमृत: अंततः प्राप्त होने वाला आत्म-ज्ञान और अमरत्व।

जब हम इन आख्यानों के गूढ़ अर्थ को समझ लेते हैं, तो पौराणिक कथाएँ हमारे जीवन का मार्गदर्शक बन जाती हैं।

भारतीय दर्शन की कालजयी विरासत

भारतीय दर्शन (षड्दर्शन—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत) दुनिया की सबसे वैज्ञानिक, समृद्ध और गहन वैचारिक विरासत है। जहाँ पश्चिमी दर्शन अक्सर बाह्य जगत् के विश्लेषण

और पदार्थों के अध्ययन तक सीमित रहा, वहीं भारतीय ऋषियों ने 'द्रष्टा चेतना' के विज्ञान को चरम सीमा तक पहुँचाया।

भारतीय दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता इसकी सार्वभौमिकता (Universalism) और स्वतंत्रता है। यहाँ किसी एक पुस्तक या किसी एक पैगंबर को मानने की अनिवार्यता नहीं है। यहाँ संशय करने, प्रश्न पूछने और स्वयं अनुभव करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। चार्वाक जैसे नास्तिक से लेकर अद्वैत वेदांत के शिखरों तक को इस परंपरा ने सहर्ष स्थान दिया। यह कालजयी विरासत हमें सिखाती है कि सत्य किसी का सर्वाधिकार (Monopoly) नहीं है; सत्य तो स्वयं का अनुभव है।

अष्टावक्र गीता सूत्रः

"मुक्ताभिमानी मुक्तो हि बद्धो बद्धाभिमान्यपि।

किंवदन्तीह सत्येयं या मतिः सा गतिर्भवेत्।।"

– (अध्याय 1, सूत्र 11)

भावार्थः जो स्वयं को मुक्त मानता है वह वास्तव में मुक्त ही है

और जो स्वयं को बँधा हुआ मानता है वह बँधा ही रहता है।

यह लोक-उक्ति बिल्कुल सत्य है कि 'जैसी मति (सोच) होती है, जैसी ही गति होती है'।

अष्टावक्र गीता सूत्रः

"आत्मा साक्षी विभुः पूर्ण एको मुक्तश्चिदक्रियः।

असंगो निःस्पृहः शांतो भ्रमात्संसारवानिव।।"

– (अध्याय 1, सूत्र 12)

भावार्थः आत्मा साक्षी, सर्वव्यापी, पूर्ण, एक, मुक्त, चेतन,

अक्रिय, असंग, इच्छा-रहित और शांत है; केवल भ्रम के कारण ही यह संसारी की भाँति प्रतीत होती है।

विस्तृत दृष्टांत

1. राजा जनक का स्वप्न: राजा जनक अपने राजप्रासाद में सुख से सो रहे थे। उन्होंने स्वप्न देखा कि एक पड़ोसी राजा ने उनके राज्य पर आक्रमण कर दिया, जनक युद्ध में हार गए, उन्हें बंदी बना लिया गया और जंगलों में भटका दिया गया। जनक भूख-प्यास से व्याकुल होकर रोटी का एक

टुकड़ा माँग रहे थे। तभी एक चील आई और रोटी झपट कर ले गई। जनक चिल्ला उठे—"हा! मैं भूखा मर रहा हूँ!" और उनकी नींद खुल गई। उन्होंने देखा कि वे अपने भव्य राजमहल में मखमली गद्दे पर लेटे हैं। जनक चकित रह गए और पूछने लगे—"वह सत्य है या यह सत्य है?" अष्टावक्र ने उत्तर दिया—"राजन्! न वह सत्य था, न यह सत्य है; केवल तुम जो दोनों अवस्थाओं को देख रहे थे, वही सत्य हो!"

2. रस्सी में साँप का भ्रम: मंद प्रकाश में एक रास्ते पर रस्सी पड़ी हुई थी। एक राही ने उसे देखा और समझा कि वहाँ भयंकर विषैला साँप है। वह भय से काँपने लगा, पसीने-पसीने हो गया और भागने लगा। तभी दूसरे व्यक्ति ने टॉर्च का प्रकाश रस्सी पर डाला। प्रकाश पड़ते ही साँप का भ्रम मिट गया। न वहाँ साँप कभी आया था, न गया था; केवल अज्ञान था। अष्टावक्र कहते हैं कि तुम्हारा बंधन भी इस रस्सी के साँप जैसा ही एक भ्रम है।

साधक-गुरु संवाद

- साधक: महर्षि अष्टावक्र कहते हैं कि "तुम अभी मुक्त हो।" परंतु मुझे तो अपने भीतर काम, क्रोध, रोग और दुखों का गहरा अनुभव होता है। मैं कैसे मान लूँ कि मैं मुक्त हूँ?
- गुरु: वत्स! अष्टावक्र यह नहीं कह रहे कि तुम्हारे शरीर और मन में विकार नहीं हैं। वे यह कह रहे हैं कि तुम उन विकारों के साक्षी हो, विकार तुम स्वयं नहीं हो!
- साधक: परंतु जब तक विकार हैं, तब तक शांति कैसे मिल सकती है?
- गुरु: विकार मन की सतह पर हैं। तुम मन से स्वयं का तादात्म्य तोड़ लो। जैसे तुम अपने वस्त्रों पर लगे दाग को देखकर यह नहीं कहते कि "मैं गंदा हूँ", वैसे ही मन के विकारों को अपना स्वभाव मत मानो।
- साधक: क्या अष्टावक्र गीता का अध्ययन करने के लिए किसी पूर्व साधना की आवश्यकता नहीं है?
- गुरु: अष्टावक्र गीता केवल अति-तीव्र मुमुक्षु (अत्यंत परिपक्व साधक) के लिए है जो एक ही झटके में अपने अहम् को गिराने का साहस रखता हो।

चिंतन-सूत्र

1. "तुम बद्ध नहीं हो, केवल बद्ध होने का भ्रम पाल रखा है; भ्रम का विसर्जन ही मुक्ति है।"
2. "अहं ब्रह्मास्मि केवल एक विचार नहीं, बल्कि परम सत्ता में अपनी वास्तविक स्थिति की पहचान है।"

3. "संसार के वृक्ष पर दो पक्षी हैं—एक दुख भोगता है, दूसरा केवल शांत देखता है; तुम शांत देखने वाले बनो।"
4. "अंतर्जगत के आख्यान तुम्हारे अपने ही मन के रूपांतरण की कथाएँ हैं।"
5. "सत्य किसी भविष्य की घटना का नाम नहीं, वर्तमान में तुम्हारी अपनी साक्षी उपस्थिति का नाम है।"

पारिभाषिक शब्दावली एवं पाद-टिप्पणियाँ

1. सद्यः मुक्ति **(Instant Liberation):** बिना किसी क्रमिक साधना या विलंब के, तत्क्षण आत्म-ज्ञान द्वारा प्राप्त होने वाली परम मुक्ति।
2. महावाक्य **(Great Sayings):** उपनिषदों के वे चार परम केंद्रीय सूत्र जो जीव और ब्रह्म की अभिन्नता का प्रतिपादन करते हैं।
3. नेति-नेति **(Neti-Neti):** निषेध की वह प्रक्रिया जिसके द्वारा अनित्य दृश्यों को नकार कर नित्य द्रष्टा तक पहुँचा जाता है।
4. चित्त-मथन **(Churning of Consciousness):** अंतर्मन की साधना की वह प्रक्रिया जिसके द्वारा अशुद्धियाँ बाहर निकलती हैं और आत्म-अमृत प्रकट होता है।
5. षड्दर्शन **(Six Systems of Indian Philosophy):** भारतीय दर्शन की छः आस्तिक धाराएँ—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत।
6. मुमुक्षुत्व **(Intense Longing for Liberation):** मोक्ष या आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने की तीव्रतम आभ्यंतरिक तड़प।
7. अद्वैत वेदांत **(Non-Dual Vedanta):** महर्षि बादरायण और आदिशंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित दर्शन जो केवल एक ही ब्रह्म की सत्ता स्वीकार करता है।
8. अविद्या **(Ignorance):** अपने वास्तविक साक्षी स्वरूप को भूलकर अनात्मा (देह-मन) को आत्मा मान लेने की मूल भूल।

अध्याय 9: गोरखनाथ की सबदी और सहज-योग की धारा

हँसते-खेलते ध्यान की सहज-समाधि ('हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानम्')

नाथ-सिद्धों की परंपरा में गुरु गोरखनाथ का स्थान अत्यंत महिमामय और क्रान्तिकारी है। सामान्यतः अध्यात्म और ध्यान को एक बहुत ही शुष्क, गंभीर, उदास और कठोर क्रिया मान लिया जाता है जहाँ साधक को अपने शरीर को कष्ट देना पड़ता है और चेहरे पर एक भारी गंभीरता लावी पड़ती है। परंतु गोरखनाथ ने इस धारणा पर तीखा प्रहार किया।

गोरखनाथ का प्रसिद्ध सूत्र है—"हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानम्।" अर्थात् जीवन को हँसते हुए, खेलते हुए, आनंद मनाते हुए जिओ और उसी सहजता में ध्यान को साधो! ध्यान कोई ऐसी कठोर मशक्कत नहीं है जो तुम्हारे चेहरे की मुस्कान छीन ले। यदि ध्यान से आनंद और प्रसन्नता नहीं घटित हो रही, तो वह ध्यान नहीं बल्कि एक नया तनाव बन गया है। सहज-समाधि वह है जो तुम्हारी रोजमर्रा की गतिविधियों—चलने, हंसने, बोलने, और काम करने—के बीच स्वतः प्रवाहित होती रहे।

बाह्य आडंबरों और पाखंड का निर्भीक निषेध

गोरखनाथ और कबीरदास जैसे सिद्ध संतों ने धर्म के नाम पर फलने-फूलने वाले बाह्य आडंबरों, मुंडन, भस्म लेपन, जटा धारण करना, तीर्थों में भटकना, और पाखंडी साधुओं का अत्यंत निर्भीकता से पर्दाफाश किया। गोरखनाथ कहते हैं कि केवल सिर मुड़ा लेने से या गेरुए वस्त्र पहन लेने से कोई योगी नहीं बन जाता; यदि सिर मुड़ाने से मोक्ष मिलता, तो भेड़-बकरियों को सबसे पहले मोक्ष मिल जाता!

सच्चा संन्यास और योग भीतर का रूपांतरण है। यदि मन में वासना, क्रोध, ईर्ष्या और लोभ भरा पड़ा है, तो बाहर का साधु-वेश केवल एक धोखा है। गोरखनाथ की 'सबदी' साधक को इन बाह्य प्रपंचों से खींचकर सीधे अपने आंतरिक 'निज-घर' (अंतरात्मा) में लौटने की प्रेरणा देती है। उनका स्पष्ट संदेश है कि काया के

भीतर ही काशी है, काया के भीतर ही मथुरा है, और काया के भीतर ही परम निरंजन परमात्मा विराजमान है।

अजपा-जप और 'सोऽहम्' की श्वास-साधना

हमारी श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया केवल शरीर को जीवित रखने का यांत्रिक साधन नहीं है, बल्कि यह हमारे मन और आत्मा को जोड़ने वाला एक अत्यंत सूक्ष्म पुल है। हम चौबीसों घंटे बिना किसी प्रयास के श्वास ले रहे हैं और छोड़ रहे हैं। जब श्वास भीतर जाती है तो 'सो' (वह/परमात्मा) की सूक्ष्म ध्वनि होती है, और जब श्वास बाहर निकलती है तो 'हम्' (मैं/जीव) की ध्वनि होती है।

यह 'सोऽहम्' (वह मैं हूँ) का जाप प्रत्येक मनुष्य के भीतर निरंतर 21,600 बार प्रतिदिन स्वतः घटित हो रहा है। इसी को नाथ सिद्ध 'अजपा-जप' (बिना जपे होने वाला जप) कहते हैं। साधक को केवल अपनी श्वास की इस सहज आने-जाने की गति के प्रति जागरूक होना पड़ता है। जब मन श्वास के साथ एकतान हो जाता है, तो चंचल विचार स्वतः शांत होने लगते हैं, कुंडलिनी शक्ति जागृत होती है और साधक सहज-योग की अगाध समाधि में प्रवेश कर जाता है।

भगवान बुद्ध का 'अप्प दीपो भव' — अपना दीपक स्वयं बनो

गोरखनाथ की सहज-धारा भगवान बुद्ध के उस अमर संदेश से गहराई से जुड़ी है जो उन्होंने अपने अंतिम समय में अपने शिष्य आनंद को दिया था—"अप्प दीपो भव" अर्थात् "अपना दीपक स्वयं बनो।" अध्यात्म के मार्ग पर कोई अन्य व्यक्ति, गुरु या शास्त्र तुम्हें अंधकार से बाहर नहीं निकाल सकता; वे केवल मार्ग दिखा सकते हैं, चलना तुम्हें स्वयं पड़ेगा।

दूसरों की वैशाखियों पर टिककर चलना अध्यात्म नहीं है। जब तक तुम अपनी बुद्धि, अपने विवेक और अपने आंतरिक प्रकाश का आश्रय नहीं लोगे, तब तक तुम अंधकार में ही भटकते रहोगे। अपनी चेतना की लौ को स्वयं प्रज्ज्वलित करो। जब तुम्हारा अपना आंतरिक दीपक जल उठता है, तो संसार का कोई भी अंधकार तुम्हें भ्रमित नहीं कर सकता। तुम स्वयं अपने मार्गदर्शक, अपने गुरु और अपने रक्षक बन जाते हो।

नाथ सिद्धों और संतों की जीवन-दृष्टि

नाथ सिद्धों (मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ, चौरंगीनाथ आदि) और संत परंपरा (कबीर, रैदास, दादू, पलटू) की जीवन-दृष्टि अत्यंत व्यावहारिक, निर्भीक और जीवन-स्वीकृति वाली थी। उन्होंने जीवन से भागने की सलाह कभी नहीं दी। वे स्वयं जुलाहे, मोची, किसान या सामान्य कामगार रहकर अपनी आजीविका कमाते थे और साथ ही समाधि के उच्चतम शिखरों को स्पर्श करते थे।

उनकी दृष्टि में 'काम' और 'राम' में कोई विरोध नहीं था। वे हाथ से काम करते थे और दिल से राम (परमात्मा) का ध्यान करते थे—"हाथ कार व दिल यार।" उनकी यह सहज जीवन-शैली आज के आधुनिक युग के मनुष्य के लिए सबसे अधिक प्रासंगिक है। हमें संसार छोड़ने की आवश्यकता नहीं है; हमें केवल संसार के प्रति अपने अज्ञान और मूर्छित दृष्टिकोण को छोड़कर सहज जोगी बनने की आवश्यकता है।

गुरु गोरखनाथ की सबदी:

"नौवा सत अवधूत रहु रीबा।

बोलिबा अम्रित बाणी।।

कदम तरवर छाँहा बैठिबा।

सहज समाधि बखानी।।"

गुरु गोरखनाथ की सबदी:

"काबा फिरिबा काशी फिरिबा, फिरिबा देस-विदेसा।

गोरख कहै सुनौ रे अवधूत, घट ही महि परमेसा।।"

विस्तृत दृष्टांत

1. हँसता हुआ बुद्ध **(लाफिंग बुद्धा):** सुभोई नाम के एक ज़ेन फकीर थे जिन्हें 'लाफिंग बुद्धा' कहा जाता था। वे गाँव-गाँव जाते, अपनी पीठ पर एक बड़ी सी पोटली लादे रहते जिसमें बच्चों के लिए खिलौने होते थे। वे गाँव के चौराहे पर खड़े होकर ठहाके मारकर हँसने लगते। उन्हें हँसते देखकर पूरा गाँव हँसने लगता, समस्त चिंताएँ पिघल जातीं। किसी ने पूछा—"आपका ध्यान क्या है?" उन्होंने अपनी पोटली नीचे रख दी और हँस के कहा—"यही मेरा ध्यान है, हलका हो जाना!" गोरखनाथ का 'हसिबा खेलिबा ध्यान' यही हलकापन है।

2. कुंभकार का घड़ा: एक कुंभकार (कुम्हार) जब मिट्टी का घड़ा बनाता है, तो वह बाहर से तो घड़े पर थपकी मारता (चोट करता) है, परंतु भीतर से अपना दूसरा हाथ घड़े के नीचे सहारा देने के लिए लगाए रखता है। गोरखनाथ की सहज-साधना भी ऐसी ही है—बाहर से जीवन का कठोर कर्म और चुनौतियाँ, परंतु भीतर से साक्षी भाव और सहज-योग का निरंतर सहारा।
3. श्वास का झूला: एक बालक झूले पर बैठकर आगे-पीछे झूलता है और आनंदित होता है। हमारी श्वास भी भीतर और बाहर झूलने वाला एक दिव्य झूला है। जो साधक इस श्वास रूपी झूले पर बैठकर 'सोऽहम्' का संगीत सुनने लगता है, वह संसार के समस्त तनावों से मुक्त होकर परम समाधि का रस पीने लगता है।

साधक-गुरु संवाद

- साधक: गुरुदेव! नाथ सिद्धों की 'अजपा-जप' साधना सुनने में बहुत सरल लगती है, परंतु जब मैं श्वास पर ध्यान टिकता हूँ, तो मन 10 सेकंड में ही भाग जाता है!
- ** गुरु:** वत्स! मन का काम ही भागना है। जब मन भागे, तो उससे लड़ो मत। केवल यह देखो कि "अरे, मन भाग गया!" जैसे ही तुम्हें यह होश आएगा, मन स्वतः पुनः श्वास पर लौट आएगा।
- साधक: क्या ध्यान करते समय चेहरा गंभीर और शरीर अकड़ा हुआ रखना ज़रूरी नहीं है?
- गुरु: बिल्कुल नहीं! गोरखनाथ जी का स्पष्ट आदेश है कि शरीर को तनावमुक्त (Relaxed) रखो और मन में प्रसन्नता रखो। अकड़ना तो अहम् का लक्षण है; सहजता आत्मा का लक्षण है।
- साधक: 'अप्प दीपो भव' का व्यावहारिक अर्थ क्या है?
- गुरु: इसका अर्थ है कि अंधविश्वास मत करो। किसी की बात केवल इसलिए मत मानो क्योंकि वह शास्त्र में लिखी है या गुरु ने कही है। उसे अपने अनुभव की कसौटी पर कसो। जब तुम्हारा अपना अनुभव गवाही दे, तभी उसे स्वीकार करो।

चिंतन-सूत्र

1. "उदास और गंभीर होना ध्यान नहीं; हँसते-खेलते सहज रहना ही परम समाधि है।"
2. "बाहर के भेस से कोई साधु नहीं बनता; मन का निष्कलंक होना ही सच्चा संन्यास है।"
3. "हर श्वास में 'सोऽहम्' का अनहद संगीत गूँज रहा है; बस सुनने वाला होश चाहिए।"
4. "दूसरों की दी हुई रोशनी में कब तक चलोगे? अपना दीपक स्वयं बनो।"
5. "हाथ से संसार का काम करो और हृदय को परमात्मा के प्रेम में लीन रखो।"

पारिभाषिक शब्दावली एवं पाद-टिप्पणियाँ

1. सहज-समाधि **(Sahaja Samadhi):** बिना किसी शारीरिक या मानसिक क्लेश के, रोजमर्रा के जीवन में स्वतः प्रवाहित होने वाली प्राकृतिक समाधि स्थिति।
2. अजपा-जप **(Ajapa Japa):** श्वास-प्रश्वास के साथ बिना किसी प्रयत्न के स्वतः होने वाला 'सोऽहम्' का निरंतर आंतरिक जप।
3. सबदी **(Sabadi):** नाथ सिद्धों और कबीर आदि संतों द्वारा रचित वे काव्यात्मक पद जो परम सत्य की सीधी और निर्भीक अनुभूति कराते हैं।
4. अप्प दीपो भव **(Be a Light unto Yourself):** भगवान बुद्ध का अमर उपदेश कि अपनी मुक्ति का मार्गदर्शक और प्रकाश स्वयं बनो।
5. अनहद नाद **(Anahad Naad):** अंतर्जगत में बिना किसी आघात या वाद्ययंत्र के स्वतः प्रकट होने वाली ब्रह्मांडीय ध्वनि।
6. कुंडलिनी **(Kundalini):** रीढ़ की हड्डी के मूल (मूलाधार चक्र) में सुप्त पड़ी हुई वह परम दिव्य आध्यात्मिक ऊर्जा।
7. निरंजन **(Niranjana):** माया, अशुद्धि और विकारों से सर्वथा रहित विशुद्ध निरपेक्ष परमात्मा।
8. नाथ परंपरा **(Nath Tradition):** गुरु मत्स्येंद्रनाथ और गोरखनाथ द्वारा स्थापित हठयोग और सहज-योग की प्राचीन समृद्ध परंपरा।

अध्याय 10: विश्व के रहस्यवादी शिखर: ताओ, ज़ेन, सूफी और कबाला

लाओत्सु और ताओवाद का 'वू-वेई' (अ-क्रिया का सिद्धांत)

चीन के महान रहस्यवादी संत लाओत्सु द्वारा प्रतिपादित 'ताओवाद' (Taoism) विश्व साहित्य में सहजता का सबसे अनूठा ग्रंथ है। लाओत्सु कहते हैं कि संपूर्ण ब्रह्मांड एक परम सत्ता द्वारा संचालित हो रहा है जिसे 'ताओ' (The Way) कहा जाता है। ताओ का सबसे मौलिक सिद्धांत है—'वू-वेई'

(Wei-Wu-Wei), जिसका शाब्दिक अर्थ है—"अ-क्रिया के माध्यम से क्रिया" (Action through Inaction) या "अ-प्रयास का प्रयास"।

'वू-वेई' का अर्थ आलस्य या काम न करना नहीं है, बल्कि इसका अर्थ है—प्रकृति के सहज प्रवाह के विरुद्ध कोई कृत्रिम दबाव न डालना। जिस प्रकार जल ढलान की ओर बिना किसी संघर्ष के स्वतः बहता है, वैसे ही साधक को अस्तित्व की इच्छा के साथ एकाकार होकर बहना चाहिए। जब आप अपनी व्यक्तिगत इच्छा (Willpower) को परम अस्तित्व की इच्छा में विलीन कर देते हैं, तो बिना किसी तनाव के आपके माध्यम से महानतम कार्य संपन्न होने लगते हैं।

जापानी ज़ेन का 'सतोरी' और 'कोआन' की पहेली

जापान और चीन की 'ज़ेन' (Zen) परंपरा भारतीय ध्यान (Dhyana) का ही विकसित और परिष्कृत रूप है। ज़ेन में 'सतोरी' (Satori) का अर्थ है—अचानक, तत्क्षण प्राप्त होने वाला आत्म-साक्षात्कार (Sudden Enlightenment)। ज़ेन गुरु अपने शिष्यों के तार्किक और विश्लेषणात्मक मन (Logical Mind) को तोड़ने के लिए 'कोआन' (Koan) नाम की अद्भुत पहेलियों का उपयोग करते हैं।

कोआन ऐसी पहेलियाँ होती हैं जिनका उत्तर बुद्धि या तर्क से कभी नहीं दिया जा सकता। उदाहरण के लिए—"एक हाथ की ताली की आवाज कैसी होती है?" (What is the sound of one hand clapping?)। शिष्य दिन-रात इस पहेली का उत्तर ढूँढने का प्रयास करता है। जब उसका बुद्धि-बल पूरी तरह थककर हार मान लेता है और तर्क का अंत हो जाता है, तो उस मन-शून्य (No-Mind) के क्षण में 'सतोरी' की कौंध चमकती है और शिष्य परम सत्य में जाग जाता है।

सूफी मत का 'फना और बाका' — प्रेम की पराकाष्ठा

इस्लाम की रहस्यवादी धारा 'सूफी मत' (Sufism) प्रेम, संगीत, नृत्य और विसर्जन का अति सुंदर मार्ग है। संत मंसूर अल-हल्लाज, मौलाना जलालुद्दीन रूमी, और रबिया जैसी महान सूफी आत्माओं ने ईश्वर को 'महबूब' (प्रियतम) माना। सूफी साधना के दो मुख्य सोपान हैं—'फना' (Fana) और 'बाका' (Baqaa)।

'फना' का अर्थ है—परमात्मा के अतिशय प्रेम में अपने पृथक अहंकार और 'मैं-पन' को पूरी तरह मिटा देना, भस्म कर देना। जब साधक 'फना' हो जाता है, तो वह मंसूर की भाँति पुकार उठता है—"अनलहक़"

(मैं ही सत्य/ब्रह्म हूँ)। फना के बाद जो अवस्था आती है उसे 'बाका' कहते हैं—अर्थात् अपने ईश्वर- स्वरूप में सदा-सदा के लिए अमर हो जाना। सूफी संत नृत्य (Whirling Dervishes) करते हुए स्वयं को उस परम प्रियतम के प्रेम में विलीन कर देते हैं।

यहूदी कबाला का 'एइन सोफ' (सीमा-हीन अनंत)

यहूदी धर्म की रहस्यवादी परंपरा 'कबाला' (Kabbalah) ईश्वर के उस स्वरूप की व्याख्या करती है जो सीमा-हीन, अनपेक्षित और अनंत है, जिसे वे 'एइन सोफ' (Ain Soph - The Infinite) कहते हैं। कबाला के अनुसार, यह दृश्यमान जगत् उसी सीमा-हीन अनंत (एइन सोफ) से फूटने वाली प्रकाश की दस धाराओं (Sephirot) का प्रकटीकरण है।

कबाला हमें सिखाती है कि मनुष्य का अंतिम लक्ष्य अपने भीतर छिपे हुए उस अनंत प्रकाश को पहचानना और अपनी चेतना को पुनः 'एइन सोफ' में लीन करना है। विश्व की इन सभी रहस्यवादी धाराओं—ताओ, ज़ेन, सूफी, कबाला और भारतीय अद्वैत—का निष्पक्ष अध्ययन करने पर यह अद्भुत सत्य प्रकट होता है कि नाम और भाषा अलग हो सकते हैं, किंतु अंतर्जगत का अंतिम अनुभव एक ही है।

विश्व की सभी रहस्यवादी धाराओं की अद्वैत एकता

सत्य एक है, विद्वान उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं ('एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति')। चाहे भारत के उपनिषद हों, चीन का ताओ ते चिंग हो, जापान की ज़ेन कथाएँ हों, मध्य पूर्व के सूफी कलाम हों या यहूदी कबाला—सभी रहस्यवादियों की अंतर्दृष्टि एक ही सत्य की ओर इशारा करती है।

सभी धाराएँ एक स्वर में कहती हैं कि:

1. बाह्य जगत् परिवर्तनशील और क्षणभंगुर है।
2. अहम् (Ego) ही मनुष्य का सबसे बड़ा बंधन है।
3. विचारों के पार जो मौन और साक्षी चेतना है, वही परम सत्य है।
4. प्रेम, स्वीकार और ध्यान ही आत्म-साक्षात्कार के परम मार्ग हैं।

जब साधक इस सार्वभौमिक अद्वैत एकता (Universal Oneness) को पहचान लेता है, तो उसकी संप्रदायिकता, धार्मिक कट्टरता और संकीर्णता का सर्वनाश हो जाता है और वह संपूर्ण विश्व को अपना परिवार मानने लगता है।

मौलाना रूमी का कलामः

"मरा बर्गो नवाय नू निस्त,

ब-ज़ुज़ इश्क़त हवाए नू निस्त।

मन न मनम, तो तोई, मन तोम!"

भावार्थः मेरे पास प्रेम के अतिरिक्त कोई अन्य भाषा नहीं है।

मैं 'मैं' नहीं हूँ, तू 'तू' नहीं है; मैं तू ही बन गया हूँ!

लाओत्सु – ताओ ते चिंगः

"जो ताओ को जानता है वह बोलता नहीं;

जो बोलता है वह ताओ को जानता नहीं।

अपने द्वार बंद करो, अपने छिद्रों को शांत करो,

अपनी तीक्ष्णता को भोला करो, और परम अद्वैत में विलीन हो जाओ।"

विस्तृत दृष्टांत

1. एक हाथ की ताली **(**ज़ेन कोआन**):** एक युवा शिष्य अपने ज़ेन गुरु के पास गया। गुरु ने कहा—"जाओ और एक हाथ की ताली की आवाज सुनकर आओ।" शिष्य नदी के किनारे गया और पानी की लहरों की आवाज सुनी, पक्षियों की चहचहाहट सुनी, हवा की सरसराहट सुनी, किंतु गुरु ने सबको अस्वीकार कर दिया। थक हारकर शिष्य एक रात ध्यान में बैठ गया। जब उसके सारे प्रयास गिर गए और मन पूरी तरह शून्य हो गया, तो उसने अपने भीतर परम मौन का अनहद संगीत सुना। प्रातः आकर उसने गुरु के चरणों में सिर झुका दिया। गुरु ने मुस्कुराकर कहा—"शाबाश! तुमने एक हाथ की ताली की आवाज सुन ली!"
2. रूमी का नर्तक **(**घूमता दरवेश**):** सूफी संत रूमी जब ध्यान में उतरते थे, तो वे एक स्थान पर खड़े होकर गोल-गोल घूमने लगते थे। घंटों घूमते-घूमते एक ऐसी स्थिति आती थी जहाँ उनका शरीर तो घूम रहा होता था, किंतु उनके भीतर का केंद्र परम स्थिर और अचल रहता था। यह इस बात का प्रतीक है कि संसार का चक्र भले घूमता रहे, किंतु आपकी साक्षी चेतना सर्वदा स्थिर रहती है।

3. ताओ और बहता पानी: जल सर्वदा नीचे की ओर बहता है, वह सबसे नम्र स्थानों को चुनता है, जहाँ कोई जाना नहीं चाहता। वह कठोर से कठोर चट्टान को भी अपनी नम्रता और निरंतरता से घिसकर गोल कर देता है। लाओत्सु कहते हैं कि ताओ साधक को इसी जल की भाँति नम्र, सहज और प्रवाहित होना चाहिए।

साधक-गुरु संवाद

- साधक: महाराज! ताओ का 'वू-वेई' (अ-प्रयास का प्रयास) सुनकर मन आकर्षित होता है, परंतु दैनिक जीवन में बिना प्रयास के कोई काम कैसे हो सकता है?
- गुरु: वत्स! अ-प्रयास का अर्थ यह नहीं कि तुम हाथ-पैर चलाना बंद कर दो। इसका अर्थ यह है कि कर्ता-भाव का तनाव छोड़ दो। जब तुम तैरना सीखते हो, तो शुरुआत में पानी से लड़ते हो और डूबने लगते हो। परंतु जब तैरना सीख जाते हो, तो तुम पानी पर शांत लेट जाते हो और पानी तुम्हें स्वयं तैरने लगता है। यही 'वू-वेई' है।
- साधक: क्या सूफियों का 'फना' होना अद्वैत वेदांत के 'अहंकार विसर्जन' के समान ही है?
- गुरु: शत-प्रतिशत समान! सूफी जिसे 'फना' कहते हैं, वेदांत में उसे ही 'अहं-नाश' कहा जाता है। भाषा सूफी की प्रेम की है और वेदांत की ज्ञान की, किंतु दोनों का परिणाम एक ही है—स्वयं को मिटाकर परमात्मा हो जाना।
- साधक: ज़ेन कोआन का वास्तविक उद्देश्य क्या है?
- गुरु: तर्क-युक्त मन को पंगु (Crash) बनाना! जब तक बुद्धि काम करती है, तब तक ध्यान घटित नहीं होता। कोआन बुद्धि को ऐसी जगह लाकर खड़ा कर देता है जहाँ बुद्धि का अंत होता है और आत्म-ज्ञान का प्रारंभ।

चिंतन-सूत्र

1. "अ-प्रयास में ही परम प्रयास का सौंदर्य और विश्रांति छिपी है।"
2. "जब तर्क की सीमा का अंत होता है, वहीं से आत्म-साक्षात्कार का प्रारंभ होता है।"
3. "स्वयं को मिटा देना (फना) ही उस परम अमरत्व (बाका) को पाने का एकमात्र द्वार है।"
4. "ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं, बल्कि इस संपूर्ण अस्तित्व का अनंत, सीमा-हीन प्रकाश (एइन सोफ) है।"
5. "सभी नदियों का जल अलग दिख सकता है, किंतु सागर में मिलते ही सब एक हो जाते हैं; यही विश्व के रहस्यवाद का मर्म है।"

पारिभाषिक शब्दावली एवं पाद-टिप्पणियाँ

1. ताओ **(The Tao):** ताओवाद के अनुसार वह परम, अनाम और सर्वव्यापी ब्रह्मांडीय सत्ता और नियम।
2. वू-वेई **(Wu-Wei):** 'अ-क्रिया की क्रिया'—प्रकृति के सहज प्रवाह के साथ बिना किसी व्यक्तिगत तनाव या अहंकार के कर्म करना।
3. सतोरी **(Satori):** जापानी ज़ेन बौद्ध धर्म में प्रयुक्त शब्द, जिसका अर्थ है तत्क्षण और अचानक प्राप्त होने वाला आत्म-बोध।
4. कोआन **(Koan):** ज़ेन परंपरा की वे विरोधाभासी पहेलियाँ जो तार्किक मन को तोड़कर शून्य-चित्त स्थिति में लाती हैं।
5. फना **(Fana):** सूफी दर्शन में परमात्मा के अनंत प्रेम में अपने व्यक्तिगत अहम् का पूरी तरह विसर्जन।
6. बाका **(Baqaa):** फना होने के पश्चात परमात्मा के नित्य और अमर स्वरूप में सदा के लिए स्थित हो जाना।
7. अनलहक़ **(An-al-Haqq):** सूफी संत मंसूर अल-हल्लाज का अमर उद्घोष, जिसका अर्थ है "मैं ही परम सत्य (ब्रह्म) हूँ"।
8. एइन सोफ **(Ain Soph):** यहूदी कबाला दर्शन में प्रयुक्त शब्द, जिसका अर्थ है सीमा-हीन, अनपेक्षित और अनंत परम सत्ता।

अध्याय 11: वाणी का तप, मृत्यु का महा-उत्सव और अनंत का मौन

वाणी का तप और शब्दों की सीमा

मनुष्य की वाणी (Speech) एक अत्यंत शक्तिशाली ऊर्जा है। हमारी वाणी से ही संबंधों का निर्माण होता है और वाणी के असंतुलन से ही भीषण विनाश और युद्ध होते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में 'वाणी का तप'

बताते हुए कहा गया है कि ऐसी वाणी बोलो जो उद्वेग न पैदा करने वाली हो, सत्य हो, प्रिय हो और हितकारी हो ('अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्')।

परंतु साधना की दृष्टि से वाणी की एक बहुत बड़ी सीमा है। शब्द केवल बाह्य और दृश्यमान संसार के संकेतों को व्यक्त कर सकते हैं; वे उस परम, अनाम परमात्मा को कभी व्यक्त नहीं कर सकते। उपनिषद कहते हैं—"जहाँ से वाणी मन के साथ लौट आती है, उस सत्य को प्राप्त किए बिना" ('यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह')। सत्य का वर्णन शब्दों में संभव नहीं है; सत्य का तो केवल मौन में आस्वादन किया जा सकता है।

सुषुप्ति, तुरीय और निद्रा-समाधि का रहस्य

मानव चेतना की चार मुख्य अवस्थाएँ होती हैं जिनका गहरा मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक विश्लेषण माण्डूक्योपनिषद में किया गया है:

1. जाग्रत **(Waking State):** जहाँ हम बाह्य जगत् का अनुभव देह और इंद्रियों से करते हैं।
2. स्वप्न **(Dream State):** जहाँ मन अपने भीतर कल्पित दृश्यों का सृजन करता है।
3. सुषुप्ति **(Deep Sleep):** जहाँ न कोई विचार होता है, न कोई स्वप्न। यहाँ गहरा विश्राम होता है, किंतु यह अज्ञान से ढकी मूर्छा (Unconsciousness) की अवस्था होती है।
4. तुरीय **(The Fourth State):** यह चेतना की वह परम साक्षी अवस्था है जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीनों का अतिक्रमण कर जाती है। तुरीय अवस्था में सुषुप्ति जैसा परम विश्राम और जाग्रत जैसा पूर्ण होश एक साथ विद्यमान रहता है। इसी को 'निद्रा-समाधि' या नित्य साक्षी स्थिति कहते हैं।

पिंजरे से पंछी की उड़ान — मृत्यु का महा-उत्सव

साधारण मनुष्य के लिए मृत्यु (Death) सबसे बड़ा भय, भयानक अंत और विनाश की घटना है। परंतु एक ज्ञानी और जोगी के लिए मृत्यु कोई अंत नहीं, बल्कि जीवन की पूर्णता और एक परम महा-उत्सव (Grand Celebration) है। मृत्यु वास्तव में क्या है? मृत्यु केवल शरीर रूपी जीर्ण पिंजरे का टूटना और आत्मा रूपी पंछी की अनंत नीले आकाश में परम उड़ान है।

जिसने जीवन भर साक्षी भाव की साधना की है, जिसने यह जान लिया है कि "मैं देह नहीं हूँ", उसके लिए मृत्यु के समय कोई छटपटाहट या शोक नहीं होता। वह जानता है कि जैसे पुराने वस्त्र उतारे जाते हैं, वैसे ही यह देह छूट रही है। वह मृत्यु के क्षण में हंसते-हंसते अपनी चेतना को परम आत्मा में विलीन कर देता है। उसके लिए मृत्यु का क्षण जीवन का सबसे बड़ा विवाह-उत्सव बन जाता है जहाँ दुलहिन (आत्मा) अपने प्रियतम दूल्हे (परमात्मा) से सदा के लिए मिल जाती है।

परम मुक्ति व अनंत का मौन (Noble Silence)

जब साधक के मन के समस्त विचार, विकल्प, वासनाएँ और अहंकार विलीन हो जाते हैं, तो जो शेष बचता है वह है—'परम मौन' (Noble Silence / आर्य मौन)। यह मौन शब्दों की अनुपस्थिति मात्र नहीं है; यह मौन तो चेतना का अपना मूल स्वभाव है। यह वह अगाध निस्तब्धता है जो संपूर्ण ब्रह्मांड के पीछे निरंतर गूँज रही है।

परम मुक्ति इसी अनंत के मौन में विश्राम कर जाने का नाम है। यहाँ न कोई पाने को कुछ बचता है, न खोने को। यहाँ समस्त प्रश्न समाप्त हो जाते हैं, समस्त शंकाएँ पिघल जाती हैं। यहाँ केवल 'अस्ति' (Isness), 'भाति' (Consciousness) और 'प्रिय' (Bliss)—सच्चिदानंद का साम्राज्य रह जाता है। जोगी इस मौन में डूबकर स्वयं मौन ही हो जाता है।

जीवन की पूर्णता और अंतिम आत्म-निवेदन

जब यात्रा अपने अंतिम पड़ाव पर पहुँचती है, तो साधक का जीवन एक पूर्ण वृत्त (Full Circle) बन जाता है। उसके भीतर न कोई पछतावा होता है, न भविष्य की कोई तृष्णा। उसका जीवन एक सुवासित पुष्प की भाँति पूरी तरह खिलकर अपनी सुगंध बिखेर चुका होता है।

वह अपने अंतिम आत्म-निवेदन में हाथ जोड़कर संपूर्ण अस्तित्व के प्रति नतमस्तक होता है—"हे परम पिता! हे अनंत चेतना! तेरी इस दिव्य लीला में मुझे अपनी भूमिका निभाने का अवसर मिला, इसके लिए मैं कोटिशः कृतज्ञ हूँ। अब यह बूँद महासमुद्र में गिर रही है; अब यह ज्योति महा-ज्योति में विलीन हो रही है। ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥"

मांडूक्योपनिषद मंत्रः

"नांतःप्रज्ञं न बहिष्प्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्।

अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिंत्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं

प्रपंचोपशमं शांतं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः।।"

– (मंत्र 7)

भावार्थः जो न अंतर्मुख चेतना है, न बहिर्मुख चेतना है, जो केवल शांत,

कल्याणकारी, निर्द्वंद्व, सर्व-प्रपंच से रहित अद्वैत है–वही 'तुरीय' चौथा पाद है, वही आत्मा है, वही जानने योग्य है।

संत कबीर की साखीः

"जिस मरने से जग डरै, मेरे मन आनंद।

कब मरिहूँ कब भेटिहूँ, पूरन परमानंद।।"

विस्तृत दृष्टांत

1. चंद्रमा की ओर इशारा करती अँगुली: एक व्यक्ति ने आकाश में दूज का सुंदर चंद्रमा देखा। उसने अपने छोटे बालक को चंद्रमा दिखाने के लिए अपनी अँगुली आकाश की ओर उठाई। यदि बालक केवल अँगुली को ही देखता रहे और चंद्रमा की ओर न देखे, तो यह उसकी भूल होगी। शास्त्र, शब्द और गुरु की वाणी केवल वह 'अँगुली' हैं जो परम सत्य रूपी 'चंद्रमा' की ओर इशारा करती हैं। शब्दों को पकड़कर मत बैठो, उस इशारे को समझकर अनंत के मौन (चंद्रमा) को देखो।
2. पिंजरे से मुक्त पंछी: एक राजहंस वर्षों से लोहे के पिंजरे में बंद था। वह नीले आकाश और मानसरोवर की याद में व्याकुल रहता था। एक दिन पिंजरे का द्वार खुला। क्या राजहंस पिंजरा छूटने पर रोएगा? वह तो अत्यंत उल्लास के साथ अपने पंख फड़फड़ाएगा और अनंत गगन की ओर उड़ान भर देगा। ज्ञानी के लिए मृत्यु देह रूपी पिंजरे से इसी राजहंस की परम उड़ान है।
3. महानदी का महा-समुद्र में विसर्जन: एक विशाल नदी हजारों किलोमीटर का सफर तय करके समुद्र के मुहाने पर पहुँचती है। समुद्र की उठती लहरें नदी का स्वागत करती हैं। नदी अपनी पूरी गति के साथ समुद्र की बाहों में समा जाती है। अब न नदी का कोई पृथक तट बचा, न कोई नाम। केवल अगाध, अपार, अनंत महा-समुद्र ही शेष रहा।

साधक-गुरु संवाद

- साधक: भगवन्! क्या वाणी के तप से मौन की प्राप्ति संभव है?

- गुरु: वाणी का तप पहला चरण है। जब तुम व्यर्थ बोलना, निंदा करना और झूठ बोलना बंद कर देते हो, तो तुम्हारी वाक्-शक्ति का संचय होता है। वही संचित ऊर्जा तुम्हें आंतरिक मौन की ओर ले जाती है।
- साधक: मृत्यु के समय भय न हो, इसके लिए जीवन में क्या तैयारी करनी चाहिए?
- गुरु: प्रति पल मरने का अभ्यास करो! प्रति पल अतीत को छोड़ते जाओ। जो व्यक्ति हर क्षण पुराने को छोड़ना सीख जाता है, उसके लिए अंतिम मृत्यु कोई नई घटना नहीं होती। वह तो रोज़ ही मरता है और रोज़ नया जन्म लेता है।
- साधक: अनंत का मौन (Noble Silence) क्या है?
- गुरु: वह मौन जो शब्दों के चुप होने से नहीं आता, बल्कि मन के शांत हो जाने से स्वतः प्रकट होता है। यह मौन शब्दों का अभाव नहीं, बल्कि परम आनंद की उपस्थिति है।

चिंतन-सूत्र

1. "शब्द केवल सत्य की ओर इशारा करने वाली उँगलियाँ हैं; सत्य तो शब्दों के पार अगाध मौन में है।"
2. "जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति मन की अवस्थाएँ हैं; तुरीय इन तीनों का साक्षी अमर स्वरूप है।"
3. "अज्ञानी के लिए मृत्यु भयंकर विनाश है, ज्ञानी के लिए मृत्यु परमात्मा से मिलन का महा-उत्सव है।"
4. "आंतरिक मौन शब्दों की अनुपस्थिति नहीं, बल्कि परम सत्ता का निशब्द संगीत है।"
5. "जब बूँद महासमुद्र में गिरती है, तो बूँद नष्ट नहीं होती; वह स्वयं महासमुद्र बन जाती है।"

पारिभाषिक शब्दावली एवं पाद-टिप्पणियाँ

1. तुरीय **(Turiya - The Fourth):** चेतना की वह चौथी अति-मानस अवस्था जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों का निरपेक्ष साक्षी है।
2. निद्रा-समाधि **(Yoganidra / Samadhi):** वह स्थिति जहाँ शरीर और मन सुषुप्ति जैसी अगाध निद्रा (विश्राम) में होते हैं, किंतु चेतना पूर्णतः जाग्रत और साक्षी रहती है।
3. आर्य मौन **(Noble Silence):** मन के समस्त संकल्प-विकल्प और विचारों के शांत होने पर स्वतः प्रकट होने वाली परम आंतरिक निस्तब्धता।
4. माण्डूक्योपनिषद **(Mandukya Upanishad):** उपनिषदों में सबसे छोटा किंतु चेतना की चार अवस्थाओं और 'ॐ' का गहनतम विश्लेषण करने वाला कालजयी ग्रंथ।

5. वाक्-तप **(Austerity of Speech):** सत्य, प्रिय, हितकारी और शांत वाणी बोलने का अनुशासित मानसिक अभ्यास।
6. महा-उत्सव **(Grand Celebration):** मृत्यु को दुख मानने के बजाय देह-मुक्ति और परमात्म-मिलन का परम आनंददायी अवसर मानना।
7. पूर्णता **(Completeness/Wholeness):** अपने आत्म-स्वरूप में किसी भी कमी या इच्छा से रहित पूर्ण परिपूर्णता का बोध।
8. अद्वैत विसर्जन **(Non-Dual Dissolution):** अपने पृथक अस्तित्व को मिटाकर सर्वव्यापी परम चेतना में सदा के लिए लीन हो जाना।

उपसंहार: जोगी के नाम अंतिम पाती

हे मेरे प्रिय आत्मन! हे जीवन-मार्ग के अनुरागी जोगी! 'देखो ए जोगी — सहज जीवन की नौका' नामक इस विशाल ज्ञान-यात्रा के अंतिम अध्याय तक पहुँचते-पहुँचते यदि आपके अंतर्मन में शांति का एक सूक्ष्म अंकुर भी प्रस्फुटित हुआ है, तो मेरा यह जीवन-प्रयास पूर्णतः सार्थक हुआ है। यह ग्रंथ केवल शब्दों का पुलिंदा या शुष्क बौद्धिक सिद्धांतों का संग्रह नहीं था; यह तो मेरे अस्सी से अधिक वर्षों के जीवन-अनुभवों, साधना के तपे हुए क्षणों और वेदों-उपनिषदों के ऋषियों, अष्टावक्र, गोरखनाथ, कबीर तथा विश्वभर के महान रहस्यवादियों की अमर वाणी का एक निष्कपट संवादात्मक आलिंगन था।

संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि जिस आनंद, जिस शांति और जिस ईश्वर की खोज में मनुष्य जनम-जनम से भटक रहा है, वह उससे कभी एक पल के लिए भी दूर नहीं था। वह सत्य तो आपकी अपनी ही श्वासों में, आपकी अपनी ही साक्षी चेतना में सर्वदा से धड़क रहा था। परंतु हमारी दृष्टि बाहर की ओर थी, इसलिए हम अपने ही भीतर छिपे उस खजाने को न देख सके। इस महाग्रंथ ने केवल आपकी दृष्टि को बाहर की व्यर्थ दौड़ से मोड़कर भीतर के अमर लोक की ओर घुमाने की एक नम्र चेष्टा की है।

अब जब आप इस पुस्तक को बंद करेंगे, तो इसे केवल एक पढ़ा हुआ शास्त्र मानकर अलमारी में मत रख दीजिएगा। इस ग्रंथ में प्रस्तुत किए गए 'साक्षी भाव', 'तथाता का स्वीकार', 'अकर्ता भाव', 'वर्तमान क्षण में जीना', और 'सहज-समाधि' के सिद्धांतों को अपने रोजमर्रा के जीवन के आचरण में उतारिए। जब आप

अपने कार्यालय में काम कर रहे हों, जब आप अपने परिवार के बीच हों, या जब आप बीमारी और दुख के कष्टप्रद क्षणों से गुज़र रहे हों—तब अपने भीतर छिपे उस जोगी को जगाइए और कहिए—"देखो ए जोगी! तुम देह नहीं हो, तुम मन नहीं हो, तुम तो इस पूरे दृश्य के असंग साक्षी हो!"

मेरी आयु के इस उत्तरार्ध में, मेरा यही एकमात्र संकल्प और ईश्वरीय मिशन है कि यह परम आध्यात्मिक ज्ञान समाज के अंतिम व्यक्ति तक बिना किसी आर्थिक या सामाजिक बाधा के पूर्णतः निःशुल्क पहुँचे। आध्यात्मिक ज्ञान कोई बेचने की वस्तु नहीं है; यह तो संपूर्ण मानवता की साझी धरोहर है। इसी पावन उद्देश्य के लिए **Bhajansamratchandra.Com** नामक निःशुल्क डिजिटल पुस्तकालय का निर्माण किया गया है, जहाँ से कोई भी मुमुक्षु साधक इस साहित्य को प्राप्त कर सकता है।

अंत में, मैं आपके भीतर विराजमान उसी परम निरंजन, सच्चिदानंद परमात्मा को नतमस्तक होकर प्रणाम करता हूँ। ईश्वर करे कि यह ग्रंथ आपके जीवन का संताप मिटाकर आपको अभय, परम समता और अखंड आनंद का मार्ग दिखाए। आपकी जीवन-नौका सहजता से बहती हुई उस परम अद्वैत महा-समुद्र में विलीन हो जाए।

"ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥"
ॐ शांतिः! शांतिः!! शांतिः!!!

परिशिष्ट: संपूर्ण पारिभाषिक शब्दावली एवं संदर्भ कोश

1. अद्वैत **(Advaita):** वह दार्शनिक सिद्धांत जो यह प्रतिपादित करता है कि जीव और ब्रह्म में कोई वास्तविक भेद नहीं है; केवल एक ही परम चेतन सत्ता विद्यमान है।
2. अजपा-जप **(Ajapa Japa):** श्वास-प्रश्वास के साथ बिना किसी बाह्य प्रयत्न के स्वतः होने वाला 'सोऽहम्' का निरंतर आंतरिक जप।

3. अकर्ता **(Non-Doer):** वह स्थिति जहाँ साधक यह अनुभव करता है कि समस्त क्रियाएँ ईश्वर या प्रकृति द्वारा हो रही हैं, वह स्वयं केवल साक्षी है।
4. अचयनित जागरूकता **(Choiceless Awareness):** बिना किसी पसंद-नापसंद, राग-द्वेष या निर्णय के चेतना को हर क्षण की यथार्थता के प्रति खुला रखना।
5. अतिक्रमण **(Transcendence):** देह, मन, बुद्धि और तीनों गुणों (सत्व, रज, तम) की सीमाओं से ऊपर उठ जाना।
6. अनिकेत **(Unattached Traveler):** वह साधक जिसका कोई निश्चित बाह्य घर या संकीर्ण सामाजिक पहचान न हो; जो संपूर्ण ब्रह्मांड को ही अपना घर मानता हो।
7. अनहद नाद **(Anahad Naad):** अंतर्जगत में बिना किसी आघात या वाद्ययंत्र के स्वतः गूँजने वाली परम अनाहत ध्वनि।
8. अनात्म **(Non-Self):** वह सब कुछ जो नित्य आत्मा से पृथक है—जैसे देह, मन, बुद्धि, इंद्रियाँ और दृश्य जगत्।
9. अनासक्ति **(Detachment):** विषयों, कर्मों और कर्मफलों में मन का न उलझना और अलिप्त रहना।
10. अनित्यता **(Impermanence):** संसार की हर वस्तु और परिस्थिति का निरंतर परिवर्तनशील और क्षणभंगुर होने का स्वभाव।
11. अपरिमित **(Infinite):** जिसकी कोई सीमा न हो; काल और स्थान की सीमाओं से परे परम सत्ता।
12. अपरिग्रह **(Non-Possessiveness):** अनावश्यक वस्तुओं, विचारों, वासनाओं और धन का संचय न करना।
13. अप्प दीपो भव **(Be a Light unto Yourself):** भगवान बुद्ध का अमर उपदेश कि अपनी आध्यात्मिक मुक्ति का मार्गदर्शक और प्रकाश स्वयं बनो।
14. अभिनिवेश **(Fear of Death):** पतंजलि योगसूत्र के अनुसार पाँच क्लेशों में से एक—मृत्यु का सहज और गहरा भय।
15. अमूर्त **(Formless):** जिसका कोई बाह्य आकार, रूप या ढाँचा न हो; निराकार परम आत्मा।
16. अहोभाव **(Gratitude):** अस्तित्व और परमात्मा के प्रति हृदय की अगाध कृतज्ञता, अहोभाव और धन्यवाद का भाव।
17. आर्य मौन **(Noble Silence):** मन के समस्त संकल्प-विकल्प और विचारों के शांत होने पर स्वतः प्रकट होने वाली परम आंतरिक निस्तब्धता।

18. आसक्ति **(Attachment):** संसार के अनित्य भोगों, व्यक्तियों या विचारों से मन का चिपकाव और मोह।
19. आत्म-विचार **(Self-Inquiry):** महर्षि रमण द्वारा प्रतिपादित 'मैं कौन हूँ?' की निरंतर शोध पद्धति।
20. इंद्रिय-निग्रह **(Control of Senses):** अपनी ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों को बाह्य विषयों में भटकने से रोककर अंतर्मुखी करना।
21. इड़ा और पिंगला **(Ida and Pingala):** रीढ़ की हड्डी के बाएँ और दाएँ स्थित दो प्रमुख सूक्ष्म नाड़ियाँ (चंद्र और सूर्य नाड़ी)।
22. ईश्वरीय उपकरण **(Divine Instrument):** स्वयं के अहम् को मिटाकर परमात्मा की दिव्य इच्छा का निष्कपट माध्यम बन जाना।
23. उद्वेग **(Agitation):** मन में उठने वाली तीव्र अशांति, क्रोध, घबराहट या चंचलता।
24. ऋत **(Cosmic Order):** वैदिक दर्शन के अनुसार संपूर्ण ब्रह्मांड को संचालित करने वाला परम प्राकृतिक और नैतिक नियम।
25. एकांत **(Solitude):** बाह्य आलंबनों से मुक्त होकर स्वयं के शुद्ध चेतना-स्वरूप में आनंदित रहने की आंतरिक स्थिति।
26. एइन सोफ **(Ain Soph):** यहूदी कबाला दर्शन में प्रयुक्त शब्द, जिसका अर्थ है सीमा-हीन, अनपेक्षित और अनंत परम सत्ता।
27. कबाला **(Kabbalah):** यहूदी धर्म की रहस्यवादी और गूढ़ आध्यात्मिक परंपरा।
28. करुणा **(Compassion):** प्राणिमात्र के दुख को देखकर हृदय का पिघलना और बिना किसी स्वार्थ के उनके कल्याण की भावना।
29. कर्मफल **(Fruit of Action):** किए गए कर्मों के परिणामस्वरूप मिलने वाला सुखद या दुखद प्रभाव।
30. काल-जयी **(Conqueror of Time):** वह साधक जो समय के प्रवाह और मृत्यु के भय से ऊपर उठकर नित्य आत्म-स्वरूप में स्थित हो गया हो।
31. कुंडलिनी **(Kundalini):** रीढ़ की हड्डी के मूलाधार चक्र में सुप्त पड़ी हुई परम दिव्य आध्यात्मिक चेतना शक्ति।
32. कोआन **(Koan):** ज़ेन परंपरा की वे विरोधाभासी पहेलियाँ जो तार्किक मन को तोड़कर शून्य-चित्त स्थिति में लाती हैं।

33. गुण **(Gunas):** प्रकृति के तीन मूल घटक—सत्व (शुद्धता/प्रकाश), रजः (गति/राग), और तमः (अंधकार/आलस्य)।
34. जीवन्मुक्ति **(Liberation while Alive):** जीवित रहते हुए ही संसार के समस्त बंधनों, भ्रांतियों और अज्ञान से सदा के लिए मुक्त हो जाना।
35. तथाता **(Tathata):** यथार्थ का बिना किसी द्वंद्व या शर्त के पूर्ण और सहज स्वीकार; ताओ और बौद्ध दर्शन का मूल सिद्धांत।
36. ताओ **(The Tao):** ताओवाद के अनुसार वह परम, अनाम और सर्वव्यापी ब्रह्मांडीय सत्ता और नियम।
37. तादात्म्य **(Identification):** स्वयं को अपने शरीर, मन, भावनाओं या बाह्य उपाधियों के साथ भूल से एक मान लेना।
38. तुरीय **(Turiya):** चेतना की वह चौथी अति-मानस अवस्था जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों का निरपेक्ष साक्षी है।
39. द्वंद्व **(Dualities):** संसार के परस्पर विरोधी जोड़े जैसे—शीत-उष्ण, सुख-दुख, मान-अपमान, लाभ-हानि आदि।
40. दृष्टा **(Seer/Observer):** देखने वाली नित्य साक्षी चेतना जो समस्त दृश्यों और विचारों से सर्वदा पृथक है।
41. नाथ परंपरा **(Nath Tradition):** गुरु मत्स्येंद्रनाथ और गोरखनाथ द्वारा स्थापित हठयोग और सहज-योग की प्राचीन समृद्ध परंपरा।
42. नेति-नेति **(Neti-Neti):** उपनिषदों की निषेधात्मक पद्धति, जिसका अर्थ है "यह भी नहीं, वह भी नहीं"।
43. नैष्कर्म्य सिद्धि **(Naishkarmya Siddhi):** कर्म करते हुए भी कर्म के बंधनों और कर्ता-भाव से पूरी तरह मुक्त होने की सिद्ध अवस्था।
44. पंचकोश **(Five Sheaths):** आत्मा को ढके हुए पाँच आवरण—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय कोश।
45. परमार्थ **(Absolute Truth):** वह परम सत्य जो काल, स्थान और परिस्थितियों से सर्वथा परे और अविनाशी है।
46. फना **(Fana):** सूफी दर्शन में परमात्मा के अनंत प्रेम में अपने व्यक्तिगत अहम् का पूरी तरह विसर्जन।

47. बाका **(Baqaa):** फना होने के पश्चात परमात्मा के नित्य और अमर स्वरूप में सदा के लिए स्थित हो जाना।
48. बुद्धत्व **(Buddhahood):** परम जागृति, बोध और आत्म-साक्षात्कार की पूर्ण परिपक्व अवस्था।
49. भक्ति-रस **(Devotional Nectar):** ईश्वर के अनन्य प्रेम और समर्पण से उत्पन्न होने वाला परम आनंदमयी रस।
50. महावाक्य **(Great Sayings):** उपनिषदों के वे चार परम केंद्रीय सूत्र जो जीव और ब्रह्म की अभिन्नता का प्रतिपादन करते हैं।
51. मुमुक्षुत्व **(Longing for Liberation):** मोक्ष या आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने की तीव्रतम आभ्यंतरिक तड़प।
52. योगनिद्रा **(Yoganidra):** शरीर और मन की अगाध विश्रांति की वह अवस्था जहाँ चेतना पूर्णतः जाग्रत और साक्षी रहती है।
53. राग-द्वेष **(Attraction and Repulsion):** अनुकूल विषयों के प्रति खिंचाव (राग) और प्रतिकूल विषयों के प्रति घृणा/अपकर्षण (द्वेष)।
54. रूपांतरण **(Transformation):** अज्ञान, अहम् और मूर्छा से निकलकर परम बोध और साक्षी भाव में जीवन का अमूलचूल परिवर्तन।
55. विदेह स्थिति **(Videha State):** देह के रहते हुए भी देह के अहम् और आसक्ति से पूर्णतः मुक्त होने की दिव्य दशा।
56. विद्या-मद **(Pride of Scholarship):** शास्त्रों और दर्शन के शुष्क ज्ञान से उत्पन्न होने वाला सूक्ष्म अहंकार।
57. वू-वेई **(Wu-Wei):** ताओवाद का 'अ-क्रिया की क्रिया' का सिद्धांत—प्रकृति के सहज प्रवाह के साथ बिना तनाव के कर्म करना।
58. सतोरी **(Satori):** जापानी ज़ेन बौद्ध धर्म में प्रयुक्त शब्द, जिसका अर्थ है तत्क्षण प्राप्त होने वाला आत्म-बोध।
59. सत्य-अन्वेषण **(Pursuit of Truth):** अपने जीवन के अंतिम और मौलिक सत्य को जानने की निष्कपट साधना।
60. समभाव **(Equanimity):** सुख-दुख, लाभ-हानि, मान-अपमान जैसी विपरीत परिस्थितियों में चित्त का अविचल रहना।

61. साक्षी **(Sakshi):** वह चेतना जो किसी भी घटना, विचार या संवेदना में लिप्त हुए बिना उसे केवल तटस्थ भाव से देखती है।
62. सुषुप्ति **(Deep Dreamless Sleep):** मन और इंद्रियों की वह अवस्था जहाँ कोई स्वप्न या विचार नहीं होता, केवल अज्ञानमयी शांति होती है।
63. सहज-समाधि **(Sahaja Samadhi):** बिना किसी शारीरिक या मानसिक क्लेश के, रोजमर्रा के जीवन में स्वतः प्रवाहित होने वाली समाधि स्थिति।
64. सोऽहम् **(So-Ham):** श्वास के साथ स्वतः गूँजने वाला महामंत्र, जिसका अर्थ है "वह परमात्मा मैं ही हूँ"।

पुस्तक परिचय (बैक-कवर ब्लर्ब)

देखो ए जोगी — सहज जीवन की नौका

क्या आप संसार की आपाधापी, निरंतर तनाव, मानसिक अशांति और भटकाव से थक चुके हैं?
क्या आप जीवन के उस अंतिम सत्य और परम शांति की खोज में हैं जो बाह्य परिस्थितियों से सर्वदा अस्पर्शित रहती है?

'देखो ए जोगी — सहज जीवन की नौका' अध्यात्म, अद्वैत दर्शन, अष्टावक्र की आत्म-दृष्टि, गोरखनाथ के सहज-योग और विश्व के महान रहस्यवादियों की अमर वाणी का एक अत्यंत विशाल, गहन और कालजयी महाग्रंथ है। यह पुस्तक किसी संकीर्ण संप्रदाय या कर्मकांड का प्रतिपादन नहीं करती, बल्कि यह आपकी अंतरात्मा में सोए हुए उस 'अमर जोगी' को जगाने का एक सशक्त महा-उद्घोष है।

इस महाग्रंथ की प्रमुख विशेषताएँ:

- **11** विशाल एवं समृद्ध अध्याय: साक्षी भाव, 'तथाता' का स्वीकार, देह-भाव से मुक्ति, निष्काम कर्म, मन का सूक्ष्म मनोविज्ञान, भीड़ में एकांत, प्रेम-लक्षणा भक्ति, अष्टावक्र गीता का मर्म, गोरखनाथ की सबदी, ताओ-ज़ेन-सूफी-कबाला का रहस्यवाद और मृत्यु का महा-उत्सव।

- शास्त्रीय एवं काव्यात्मक प्रांजल भाषा: उपनिषदों के महावाक्य, श्रीमद्भगवद्गीता, कबीर, मीरा और गोरखनाथ के अमर पदों के सरल हिंदी भावार्थ के साथ।
- विस्तृत दृष्टांत एवं साधक-गुरु संवाद: अत्यंत रोचक कहानियों, दृष्टांतों और व्यावहारिक साधक-गुरु प्रश्नोत्तर के माध्यम से गहनतम दार्शनिक रहस्यों का सुगम प्रकटीकरण।
- चिंतन-सूत्र एवं पारिभाषिक कोश: प्रत्येक अध्याय के अंत में मनन योग्य 5 चिंतन-सूत्र और 60+ शास्त्रीय शब्दों की वर्णानुक्रम में प्रामाणिक व्याख्या।

लेखक परिचय:
डा. चन्द्र प्रभाकर कोकड़ा (जन्म: 25 जुलाई 1942, भिवानी, हरियाणा) अध्यात्म, हिंदी साहित्य और समाज सेवा के क्षेत्र में एक मूर्धन्य संवाहक हैं। 1957 के मातृभाषा हिंदी आंदोलन में सक्रिय भागीदारी एवं ऐतिहासिक कारागार यात्रा से लेकर अध्यात्म के गूढ़ रहस्यों को जन-जन तक पहुँचाने के लिए आपको World Book of Records (London) द्वारा सम्मानित किया गया है। आपका जीवन-मिशन संपूर्ण मानव जाति को निःशुल्क आध्यात्मिक साहित्य उपलब्ध कराना है।

मुमुक्षु साधकों के लिए संपूर्ण आध्यात्मिक **literature** डिजिटल रूप में निःशुल्क उपलब्ध है:
वेबसाइट: Bhajansamratchandra.Com
स्थायी पता: बिचला बाजार, भिवानी - 127021, हरियाणा
संपर्क सूत्र: 9992075303